विश्वम्भरी

(महाकाव्य)

महोपाध्याय माणकचन्द रामपुरिया



कलासन प्रकाशन
कल्याणी भवन बीकानेर (राज)

समर्पण –

विश्व महाकाली के सम्मुख
आत्म समर्पण करता।
विमल विश्वम्भरी! तुम्हीं को
माते! अर्पण करता।

महोपाध्याय माणकचन्द रामपुरिया

ISBN 81 86842 23 3

सस्करण प्रथम 1998

प्रकाशन कलासन प्रकाशन
बीकानेर (राज)

लेजर प्रिंट श्री करणी कम्प्यूटर एण्ड प्रिण्टर्स
बीकानर (राज)

मुद्रक कल्याणी प्रिन्टर्स
माल गोदाम रोड बीकानेर

मूल्य 140 रुपये

Vishwambhari
(EPIC) by Mahopadhaya Manakchand Rampuria
Page 176 Price 140/-

विश्वम्भरी कोई नयी गाथा नहीं। यह मार्कण्डेय पुराण के सावर्णि में वर्णित देवी महात्म्य का एक अश है। भगवती दुर्गा की महिमा धर्मज्ञ-सुविज्ञों के लिए सर्वोपरि है। सैकड़ों हजारों वर्षों से इस आदर्श ग्रन्थ को सर्वमान्य प्रतिष्ठा प्राप्त है। इस ग्रथ ने मत्र-सिद्धि-प्रयोजनीयता प्राप्त की है। इसमें ज्ञान, भक्ति और कर्म की त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है। दैनदिन जीवन को समुन्नत और विकासोन्मुख रखने के साधनों का भी इसमें समुचित वर्णन मिलता है। कहा जाता है कि तत्र-क्षेत्र के साधकों के लिए भी इस ग्रथ में गूढ़तम रहस्यों की निधियाँ निहित हैं।

मानव-जीवन का श्रेय आत्म-विकास पर निर्भर है। यह आत्म-विकास भगवती दुर्गा की महती कृपा एव सहज अनुग्रह से ही प्राप्त होता है। दुर्गा सप्तशती में इसका विशद् वर्णन उपलब्ध है।

प्रस्तुत पुस्तक में श्री दुर्गासप्तशती के गुणों के समावेश का दावा मैं नही करता। उस मूल ग्रथ के मत्रपूत श्लोको, ऋचाओं की अतुलनीयता प्राणी-मात्र के लिए श्लाध्य और प्रात स्मरणीय है। श्री दुर्गासप्तशती के मूल-भावों को हिन्दी में लाने का यह मेरा नम्र प्रयास है। प्रस्तुत महाकाव्य में मूल पाठ की लोकमान्य सर्वप्रियता अक्षुण्ण रखी गयी है। साथ ही उसके मूल भावों को खडी बोली में पिरोने की दिशा में मेरा यह बाल-प्रयास निश्चय ही धर्म-परायण सज्जनों तथा काव्य-मर्मज्ञों को रूचिकर लगेगा, ऐसा मेरा सुनिश्चित विश्वास है।

श्री दुर्गासप्तशती की मूल कथा-देवी के तीन चरित्रों के उद्‌भव और विकास पर आधारित है। प्रथम चरित्र के प्राकट्य से मधु-कैटभ का वध होता है। दूसरे अर्थात मध्यम चरित्र में महिषासुर-वध और उत्तर चरित्र में शुम्भ तथा निशुम्भ के वध की कथा कही गयी है। किन्तु विष्णु रूपे, जगज्जननी देवी महामाया की गाथा इतनी ही कथाओं में शेष नहीं हो जाती। इन कथाओं के माध्यम से पाठकों तथा साधकों के लिए जो सन्देश दिया गया

हैं, वे चिरकालिक महत्त्व के हैं।

विश्वम्भरी में उन सभी विशेषताओं को यथा साध्य समेटने की चेष्टा की गयी है। साथ ही, वर्त्तमान परिवेश में उस मूल ग्रंथ का क्या महत्त्व है? उससे आज की वर्त्तमान पीढ़ी को क्या सन्देश मिलता है इस ओर भी सकेत करने की भी चेष्टा की गयी है। उदाहरण के लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि श्री दुर्गासप्तशती नारी-शक्ति की उद्घोषिका है। आज के समाज में तो नारियों को यथेष्ट महत्त्व मिलने लगा है किन्तु आदिकाल के उस समाज की कल्पना कीजिए, जिस समय भारत वर्ष के इतिहास में नारियों की जो स्थिति रही है, वह सर्वविदित है। उस समय नारियाँ घोर उपेक्षा और तिरस्कार की भागी थीं। श्री दुर्गासप्तशती के द्वारा नारियों के शौर्य, विवेक और मातृत्व शक्ति की पुनर्प्रतिष्ठा का जय-गान किया गया है। विश्वम्भरी में इसका भी यत्किंचित उल्लेख समाविष्ट है।

विश्वास है काव्य-प्रेमी भगवत्-भक्त जिज्ञासुओं को विश्वम्भरी निश्चय ही आनन्द प्रदान करेगी। शुभास्तु

माणकचन्द रामपुरिया

प्रथम सर्ग

जय माँ दुर्गे। सृष्टि-धारिणी।
कल्याणी-भव-करण कारिणी।।
जय-जय माते भुवन-मोहिनी।
कण-कण पर नव रूप सोहनी।।

तेरी महिमा है माँ अद्भुत-
क्रन्दन सुन आ जाती हो द्रुत!
जब भी कोई सुत माँ! रोता-
पीड़ा से जब विह्वल होता-

सुनते करुण पुकार दौड़कर-
होती रक्षा को माँ। तत्पर।
आज पुन यह सृष्टि विकल है,
जन-जन में अति कोलाहल है,

मानव आज बना दानव है-
सकट-ग्रस्त बना यह भव है।
आओ माँ! जग-कष्ट मिटाओ!
नव जीवन की ज्योति जगाओ!!

कौन काम है भला असम्भव?
तुम से ही जग का उद्भव,
फिर माँ। क्यों होती है देरी?
कितनी गहरी हुई अँधेरी?

आओ आओ जग है विह्वल-
आँसू से सब दृग है छल-छल,
ज्योतिमयी माँ। उतरो, आओ-
जड़ता काटे, तिमिर मिटाओ!

आओ माते। सष्टि-धारिणी!
कल्याणी भव-करण-कारिणी!!

सृष्टि अनन्त युगों से चलती-
इसका कोई अन्त नहीं,
पतझड़ सदा नहीं रहती है-
रहता सदा बसन्त नहीं,

कण-कण क्षण-क्षण बदल रहा है-
गतिमय जीवन का आनन,
यही प्रकृति का नर्त्तन अविरल-
जीवन में है मन-भावन,

इसको कोई प्रकृति बताता-
कोई माया कहता है,
यही तत्त्व है जो कण-कण में-
सदा अखण्डित रहता है,

रूप महामाया का भू पर-
अद्भुत और विराट सदा,
जहाँ कल्पना जगती दिखती-
उसकी छवि विशाट सदा,

उसके कारण बीज धरा में-
धँसकर बनता वृक्ष बड़ा,
उससे अणु-परमाणु सृष्टि का-
रहता है सम्पृक्त खड़ा,

जो भी तत्त्व जहाँ दिखता है-
वहीं महामाया समझो,
जो भी दृश्य नयन में गोचर-
उसने दिखलाया समझो,

उसे छोड कुछ ओर नहीं है-
जिसका कोई ध्यान धरे,
वही एक है जिस पर आश्रित-
जीवन, क्या अभिमान करे?

उसके एक कटाक्ष-मात्र से-
भव की रचना होती है,
उसके ही कारण सुख-दुख का-
भार देह सब ढोती है,

मानव की क्या बात? देवता-
उसके बस सब रहते हैं,
सब जीवों में अश उसी के-
सदा दिखाई पडते हैं

ब्रह्मा-विष्णु-महेश उसी से-
शक्ति अहर्निश पाते हैं,
उससे निर्मित जीव अन्त में-
लीन वहीं हो जाते हैं

वही एक करत्री है जग की-
पालन वही किया करती,
प्रलय-काल में वह सहारक-
शक्ति स्वय ही है धरती,

सत-रज-तम में वही विचरती-
वही सृष्टि की वाणी है,
शक्ति कहीं है महानाश की-
कहीं रूप कल्याणी है,

जो भी जग में पाँव बढाते-
उसके ही पग चलते हैं,
पूरब में दिन मणि तक जग कर-
पश्चिम में नित ढलते हैं,

जो भी रूप जहाँ दिखता है-
माया की ही माया है,
इस माया में निखिल सृष्टि का-
मानव तक भरमाया है।

यही महामाया भूतल पर-
रूप अनेकों धरती है,
तरह-तरह के वेश बनाकर-
सब को मोहित करती है।

इसकी बक भृकुटि से भूपति-
शीघ्र रक हो जाते हैं,
इसकी दया प्राप्त करके ही-
रक नृपति पद पाते हैं।

इसकी सीमा से कुछ बाहर-
नहीं दिखाई पडता है,
इसका ही स्वर गूँज रहा जो-
जहाँ सुनाई पडता है।

उसी महामाया के पद पर-
हर क्षण शीश नवाता हूँ,
जीवन के हर राग रग में-
गीत उसी के गाता हूँ।

जय-जय देवी महामाया तू-
जग की अखिल नियता है
सृजन काल में करत्री तू ही-
प्रलय काल में हँता है।

जय-जय माते। हम बालक-गण-
गोदी में हैं खेल रहे,
तेरे इगित से सुख-दुख के-
कठिन थपेड़े झेल रहे।

दया करो माँ। सृष्टि-धारिणी-
ज्वाल हृदय का शान्त करो,
जीवन की उद्वेलित धारा-
को माँ! सिन्धु प्रशान्त करो।

द्वितीय सर्ग

जय-जय देवि महामाया। तू-
सब के मन में रहती है,
जन-जन की रग-रग में तेरी-
करुणा-धारा बहती है।

जैसी मति-गति देती जिसको-
वैसा ही वह पाता है,
तेरे इगित पर ही मानव-
अपना जाल बिछाता है।

यहाँ न अपने वश की कोई-
बात कहीं भी चलती है,
तेरे एक इशारे पर ही-
दुनिया चाल बदलती है।

विष्णु देव को भी तो तूने-
निद्रा में था लीन किया,
शेष नाग की शय्या पर ही-
योग-नींद-आसीन किया।

तू ही है, विधि ने भी जिसको-
कमल-नाल पर टेरा था,
भयाक्रान्त हो मधु-कैटभ से-
तुझको ही तो हेरा था।

तू ने ही तब शक्ति-रूपिणी-
सब की जान बचाई थी,
मद से घूर्णित दानव-बल को-
तू ने धूल चटाई थी।

आज पुन जागो माँ। भू पर-
तेरी करुणा-धार बहे,
दानवता की दृष्टि न जागे-
मानव का मन शान्त रहे।

देखो भुवन त्रस्त है कितना-
हिंसा का है जोर जगा,
अनाचार-आतंकवाद है-
अम्बे। चारों ओर जगा।

जन-जन मिथ्या-दम्भ-ग्रसित है-
अहंकार-विष-बेल चढा
महागर्त की खाई में ही-
आज मनुज का पाँव बढा।

देखो माँ! सन्तान तुम्हारी-
पाप-पंक में डूब रही,
तमसाच्छन्न, विमल सत्-चित की-
सात्विकता से ऊब रही।

सब के उर में घृणा-द्वेष का-
छाया घना अँधेरा है
लोभ-मोह-ममता का केवल
सबके मन में डेरा है।

:

अपने में ही सब केन्द्रित है-
भौतिकता का जाल बिछा,
स्वार्थ-सिद्धि के लिए यहाँ पर-
पग-पग है जजाल बिछा।

ऐसा घोर अँधेरा छाया-
कुछ भी दीख न पड़ता है,
जहाँ कहीं भी दृष्टि घुमाओ-
दिखती केवल जडता है।

पिता-पुत्र सब अलग-अलग हैं-
भाई-भाई दूर खडे,
कोई कुछ उपचार न करता-
सब जन हैं मजबूर पड़े।

बेटी और बहन तक का भी-
शील नहीं बच पाता है,
सदाचार की छाती चढकर-
अनाचार इठलाता है।

देवी महामाया! अब जागो-
मानवता गुहराती है,
उजड़ रही भारत की धरती-
तुझको आज बुलाती है।

दिशा-दिशा में देखो माते।
भीषण हाहाकार भरा,
दहक रहा अन्तरतर सबका
हींसा का अगार भरा।

यह विनाश की लीला भी तो-
माता! तेरी माया है,
जीवन की जडता भी तेरी-
जागृति की ही छाया है।

तुम्ही शमन कर सकती केवल-
इस भीषण उद्वेलन को,
एक तुम्हीं आ सकती हो माँ
मानवता के रक्षण को।

तेरा ही वरदान प्राप्त कर-
जीवन का सुख मिलता है,
तेरी दया-दृष्टि से माते!
मन का सरसिज खिलता है।

यों तो जीवन अध-कूप में-
पड़ा सदा अकुलाता है
अधकार में डूब रहा मन-
देख नहीं कुछ पाता है।

जिस पर तेरी दया हुई है-
उसको सब कुछ प्राप्त हुआ,
तेरी कृपा-कटाक्ष हुई तो-
भू पर मानव आप्त हुआ।

आज पुन वह भीषण सकट-
मानवता पर छाया है,
लगता जैसे महानाश ही-
जाग सामने आया है।

जय माँ दुर्गे! दया करो अब-
वसुधा तुम्हें पुकार रही,
तुम्हीं एक अवलम्ब शेष हो-
मानवता चीत्कार रही।

तृतीय सर्ग

जयति महामाया! यह संसृति-
    तेरी करुणा से चलती,
तू ही रूप बदल कर इसके-
    मंगल भावों में ढलती।

तेरे कारण ही यह धरती-
शस्य-श्यामला बनती है,
मरु की धरा निखर कर उर्वर-
रूप अनोखा सजती है।

तेरे कारण ही नृप भू पर-
चक्रवर्ती बन पाता है,
न्याय-नीति अपनाकर जग में-
महिमामय बन जाता है।

एक कल्प इस भूमि खण्ड पर-
सुरथ नृपति का राज रहा,
पुण्य-व्रती वह एक मनुज ही-
भूतल का सिरताज रहा।

दूर-दूर के देश स्वय ही-
उसके वश में आए थे,
सात्विकता के सभी गुणों को-
सादर सब अपनाए थे।

कोई दुखी नहीं था, उसकी-
प्रजा सदा इठलाती थी,
प्रेम-भाव से आकर सब कुछ-
चरणों पर धर जाती थी।

सभी लोग उस राज-व्यवस्था-
में आनन्द मनाते थे,
दुख के कैसे क्षण होते हैं-
जान नहीं वे पाते थे।

अपने औरस पुत्रों-सा ही-
प्रजा-जनों को रखते थे,
उनके सुख-दुख में ही भू-पति-
हँसते ओर बिलखते थे।

कोई उनसे रूष्ट नहीं था-
अपनों से सब रहते थे
राजा और प्रजा सब मिलकर-
आतप-वर्षा सहते थे।

खुला खजाना रहता जिसका-
करते थे उपयोग सभी,
धरती का धन बढे निरतर-
करते थे उद्योग सभी।

वड़ी शान्ति थी, किसी तरह का-
होता था उत्पात नहीं,
सव आनन्द-विभोर, किसी के-
मन पर था आघात नहीं।

माँ अम्बे की बडी कृपा थी-
रहते थे सब मग्न सदा,
उनके जीवन में सुख का ही-
आता था शुभ लग्न सदा।

किन्तु अचानक कोलावशी-
एक दिवस चढ आए थे,
नृपति सुरथ के आगे मानो-
दुर्दिन के घन छाए थे।

सुरथ पराजित होकर अपने-
गढ तक में ही सिमट गया,
मानों कोई श्री-विहीन तन-
गठरी में ही सिमट गया।

दृष्टि महामाया की जैसे-
फिरी, कि सब कुछ नष्ट हुआ,
पुष्प-सुवेसित तन को निष्ठुर-
काँटों का ही कष्ट हुआ।

कहाँ रहा भू-मण्डल सारा-
सब कुछ का ही लोप हुआ,
शेष न कुछ भी बच पाया जब-
अम्बे का था कोप हुआ।

रूष्ट महामाया जब होती-
सब कुछ ही छिन जाता है,
सब कुछ रहने पर भी मानव-
दुःख अहर्निश पाता है।

कृपा महामाया की थी तो-
सुरथ भुवन पर छाए थे,
तरह-तरह के सुख-साधन से-
अपना राज सजाए थे।

भू पर कोई उनके जैसा-
दिखता था नर श्रेष्ठ नहीं,
चक्रवर्ती से भूतल पर थे-
राजाओं में ज्येष्ठ वही।

किन्तु महामाया की लीला-
कितनी अद्भुत होती है,
जान न कोई पाता कब वह-
जगती है, कब सोती है?

सुरथ नृपति भी अब तो राजा-
एक नगर के शेष रहे,
परम तुंग-उत्तुंग-शिखर के-
भग्न-चूर्ण-अवशेष रहे।

अपने जन भी शत्रु-शिविर में-
एक-एक कर चले गए,
विश्वासी जन-मीत सचिव के-
हाथों ही थे छले गए।

ऐसे में ही एक दिवस वे-
मृगया को थे निकल पड़े,
दूर-सुदूर-गहन जगल में-
आकर नृप थे हुए खड़े।

सहसा मेधा ऋषि का आश्रम-
दीखा विमल-पवित्र वहाँ,
पावन-परम सुहावन-सा था-
सात्विकता का चित्र वहाँ।

नृप ने किया प्रणाम हृदय से-
शीश झुका फिर बैठ गए,
उनके मन में जागे तत्क्षण
भाव अनेकों नए-नए।

किया प्रणाम महामाया को-
आँख मूँद लौ-लीन हुए,
विनय हृदय से लगी फूटने -
मन से प्रेम प्रवीण हुए।

जयति महामाया इस भू पर-
कोई तुझे न जान सका,
किसमें वह सामर्थ्य कि अम्बे!
तुझको जो पहचान सका?

जय-जय अम्बे भुवन-मोहिनी-
तू ही सब कुछ करती है,
क्षण में तू ही आर्त्तजनों का-
दुःख अपरिमित हरती है।

चतुर्थ सर्ग

दिव्य महामाया की महिमा–
दिग–दिगन्त तक छाई है,
शूलों में है तीक्ष्ण धार तो–
फूलों में मुस्काई है।

कोई ऐसा एक न कण जो-
तुझ से अम्बे! विलग रहे,
तुझ से ही पा शक्ति गगन में-
सूरज-चदा सजग रहे।

हुआ सभी कुछ तेरे मन का-
आगे भी सब वैसा ही,
होगा भू पर माते! सब कुछ-
चाह रही तू जैसा ही।

सर्वो परि है तेरी इच्छा-
यही सृष्टि का परिवर्त्तन,
पल-पल-छन-छन इस धरती पर-
चलता तेरा ही नर्त्तन।

तेरे कर में सृष्टि चराचर-
दिशा-काल-विस्तृत अम्बर
काँप रहे सब भृकुटि-मात्र से-
भूतल के उन्नत भू धर।

कोई ऐसा नहीं कि तेरा-
चाप पाँव का रोक सके
किस में है सामर्थ्य कि तुझको-
कहीं किसी क्षण टोक सके।

इसी महामाया के चिन्तन-
    में नृप क्षण भर लीन रहे,
आश्रम-सम्मुख एक शिला पर-
    चुपके से आसीन हुए।

मेधा ऋषि ने देख लिया यह-
    नृपति सुरथ ही आया है,
भ्रमित महामाया से होकर-
    अब तक यह भरमाया है।

ऋषि ने तुरत बुलाकर नृप को-
    राजोचित सम्मान दिया,
पास बिठाकर आसन पर ही-
    सात्विक सब सत्कार किया।

परम रम्य वह आश्रम सुन्दर-
    सब के मन को हरता था,
निर्भय था वह क्षेत्र, वहाँ पर-
    कोई कभी न डरता था।

वन के पशु-पक्षी तक निर्मल-
    मन से वहाँ विचरते थे,
पाप-पंक में गिरने वाला-
    काम न कोई करते थे

हिंसा की कुछ बात नहीं थी-
शान्त सभी जन रहते थे,
खुली दृष्टि थी, मुक्त हृदय था
भार न कोई सहते थे।

अनायास सब सहज भाव से-
जीव वहाँ पर जीते थे,
वानर-बकरी-व्याघ्र वहाँ आ-
साथ-साथ जल पीते थे।

हिंसक जीवों में भी निष्ठुर-
वृत्ति न कुछ भी जगती थी,
परम शान्ति की विमल रागिनी-
वहाँ सुनाई पडती थी।

शीतल सुरभि बयार वहाँ पर-
मन्द-मन्द मुस्काती थी
भौंरों के गुन-गुन पर कलियाँ
घूँघट-दल सरकाती थी।

फूलों में मकरन्द भरा था-
मधु के छत्ते झूल रहे,
वृन्त-वृन्त पर पत्ते-पत्ते-
दिखते कोमल फूल रहे।

हिरण चौकड़ी भरता आ-आ-
पक्षी कलरव करते थे,
जंगल के निर्भ्रान्त कुन्ज में-
जीवन के सुख भरते थे।

सहज सरसता बरस रही थी-
कुछ भी था उद्वेग नहीं,
किसी तरह की बाधा-बन्धन-
का दिखता आवेग नहीं।

उस पावन कानन में आकर-
नृप भी भाव विभोर हुए,
वन की शुचि सुन्दरता-छवि में-
उनके नयन चकोर हुए।

रहे देखते कुछ क्षण लेकिन-
अपने में फिर घिर आए,
बीते-दिन के भावों में नृप-
अनायास फिर, फिर आए।

लगे सोचने कैसा था वह-
राज आज जो छूट गया?
कितना था ऐश्वर्य हमारा-
दुश्मन सब जो लूट गया।

बीते क्षण की सुख की यादें-
रह-रह उन्हें सताती थी,
आज बिछुड कर भी वे छवियाँ-
उनको बडी रुलाती थी।

इसी भाव में नृप ने मन से-
माया का था ध्यान किया,
एक वही जग में शाश्वत है-
ऐसा ही शुभ ज्ञान किया।

* * *

जयति महामाया इस भू पर-
तेरी महिमा न्यारी है,
तेरी ही आभा से ज्योतित-
भूतल की फुलवारी है।

पंचम सर्ग

जयति महामाया इस भू पर-
तेरा खेल अनूठा है,
उसकी समझो खैर नहीं जो-
तुझसे रहता रूठा है।

तरह-तरह के रूपों में तू-
जन-जन को भरमाती है,
तेरे वश के बाहर कोई-
शक्ति नहीं जा पाती है।

अग-जग तक सब खिचे-खिचे-से-
तुझ में सीमित रहते हैं,
जिससे जो कह जाती सब जन-
बात वहीं तक कहते हैं।

अपने मन की बात न कोई-
इस भू पर कर पाता है,
तेरा इगित पाकर ही नर-
अपना पाँव बढाता है।

भाग्य नहीं कुछ और, तुम्हीं हो-
जिससे जीवन चलता है
महागर्त्त में गिर कर भी नर-
जिससे पार उतरता है।

क्षणभर में राई को पर्वत-
तुम ही यहाँ बनाती हो,
उजड़ गयी बगिया को तू ही-
नव परिधान पिन्हाती हो।

तेरे ही कारण यह धरती–
पट–परिवर्त्तन करती है,
अखिल लोक–जीवन्त–तत्त्व में–
तू स्वच्छन्द विचरती है।

नहीं एक भी ऐसी बाधा–
तुझे घेर जो सकती है,
हर रूपों में तू ही आकर–
दृग में सदा सँवरती है।

धन–वैभव से पूर्ण वैश्य को–
कर के विवश निकाल दिया,
ले कर सब कुछ सभी तरह से–
उसको था बेहाल किया।

यह सब माया का फेरा है–
चाहे जो भी नाम धरो,
इस पर ही धरती आश्रित है–
चाहे मत विश्वास करो।

माया की अनुकम्पा से ही–
धन का था अम्बार लगा,
लोभ–मोह का अन्तर–तर में–
रहता था ससार जगा।

इसी लोभ के कारण सब ने-
घर से उसे भगाया है,
होकर वही विपन्न यहाँ इस-
आश्रम के दर आया है।

वैश्य सुखी था अपने घर में-
मोद-मगन वह रहता था,
धन-वैभव सब कुछ वह अपने-
श्रम से अर्जित करता था।

सब सबधी पास उसी के-
अपना समय बिताते थे,
उसके श्रम के फल से ही सब-
अपनी भूख मिटाते थे।

इतने पर भी उनको कुछ भी-
तोष नहीं आ पाया था,
देवि महामाया के कारण-
सब का मन भरमाया था।

चाह रहे थे सभी कि कैसे-
सारा ही धन हाथ लगे ?
वैभव का सम्पूर्ण खजाना
आकर मेरे साथ लगे ?

एक चला षडयन्त्र कि जिसमें-
सब सबधी एक हुए,
घर से उसे निकाल सभी जन-
अपने मन से नेक हुए।

वही वैश्य आज विपिन में-
अनायास ही भटक रहा,
मेधा ऋषि के आश्रम पर आ-
पग-पग मानो अटक रहा।

देख विपिन की शोभा उसके-
मन में भाव विमल जागे,
मोद-मगन-छन्न रहे हृदय से-
प्रेम-भाव में अनुरागे।

वन की शोभा बडी मधुर-सी-
मनको हरने वाली थी,
आश्रम के हर छोर-छोर की-
कुसुमित डाली-डाली थी।

सारस-हस-चकोर वहाँ थे-
पिक-स्याक सब कूज रहे,
दूर-दूर तक विप्र जनों के-
स्वस्ति वचन थे गूँज रहे।

मुगध सभी प्राणी थे वन के-
सुख का रस सब पीते थे,
मुक्त और निर्द्वन्द्व हवा में-
वन के प्राणी जीते थे।

नहीं किसी से द्वेष कहीं था-
ईर्ष्या का कुछ लेश नहीं,
उस उपवन में सभी शान्त थे-
छद्म किसी का वेश नहीं।

वैश्य वहाँ पर आकर मन से-
लीन हुआ अनुभावों में,
भूल गया वह दुःख पुरातन-
मन क सात्विक चावों में।

❖ ❖ ❖

जय-जय अम्बे भू पर तेरी-
कैसी अद्भुत लीला है,
तेरी करुणा के जल से ही-
भू का आचल गीला है।

षष्ठ सर्ग

जयति महामाया! इस जग में-
कोई तुझ से भिन्न नहीं
उसको किसकी चिन्ता जिससे-
होती है तू खिन्न नहीं।

तेरी ही लीला है जिससे-
राज-पाट सब छूट गया,
अपने प्रेमी-सगी-साथी-
का सब नाता टूट गया।

भू मण्डल में राज्य व्याप्त था-
मुझ-सा कोई और नहीं,
किन्तु तुम्हारी लीला कैसी-
आज मुझे है ठौर नहीं।

सुरथ नृपति थे सोच रहे यह-
सृष्टि चली जो आती है,
क्षण-क्षण बनती मिटती रहती-
ठहर नहीं यह पाती है।

आज जहाँ धन-वैभव कल ही-
धूल वहीं रह जाएगी,
कितनी चचल है यह गति-मति
कभी नहीं रुक पाएगी।

क्या जाने यह दिन भी ऐसा-
और कहाँ मिल पाएगा?
इस शरीर का जीव भटकता-
कब तक समय बिताएगा?

जीवन तो क्षण-भगुर सब कुछ-
माया की ही लीला है,
उसके कारण अधर बिहँसता-
रहता नयन पनीला है।

वही एक है जो इस जग में-
काम सभी कर पाती है,
हम बालक है, ज्ञान न कोई-
माया नाच नचाती है।

राजा थे तब, सोच रहे थे-
सब कुछ मेरे आश्रित है
मेरा कौन बिगाड़ सकेगा-
मुझ से सृष्टि पराजित है।

अपने सेवक और सचिव सब-
मेरे ही अनुगामी थे,
सब अनुचर थे आज्ञाकारी-
मेरी रुचि के कामी थे।

सोचा था ये लोग कभी भी-
अपनी दृष्टि न बदलेंगे,
इनमें ऐसी शक्ति कहाँ जो-
मेरा ही धन हर लेंगे?

किन्तु महामाया का ऐसा-
भू पर अद्भुत खेल हुआ,
मुझे बाँधने को मेरा ही-
सारा न्याय नकेल हुआ।

नृपति सुरथ थे सोच रहे यह-
माया कैसी न्यारी है?
बिछुड गयी जो सम्पति वह भी-
लगती कितनी प्यारी है?

• • •

इसी काल भरमाता कोई-
और मनुज आ जाता है,
मेधा ऋषि के आश्रम पर आ-
अपना शीश झुकाता है।

कृश शरीर, लज्जा से उसकी-
आँख नहीं उठ पाती थी,
गहन ग्लानि की याद हृदय को-
रह-रह कर तड़पाती थी।

वहीं शिला पर बैठ गया वह-
अपने उर में दाह भरे
सोच रहा था क्या होगा अब-
कैसे कोई काम करे।

कठिन परिश्रम किया कि जिससे-
धन-वैभव सब पाया था,
दोष-दुख-दारिद्र मिटाया-
नव जीवन अपनाया था।

लेकिन मुझको ज्ञात नहीं था-
कितना सब क्षण भगुर है?
समझ न पाया, सींच रहा जो-
मिटने वाला अकुर है।

बडी लगन से सभी जनों को-
घर में स्वय सजाया था,
कष्ट न कोई तिलभर पाए-
जी-भर प्यार लुटाया था।

नहीं जानता था, वे ही जन-
मुझको मार भगाएँगे,
मेरे श्रम की कठिन कमाई-
पर अधिकार जमाएँगे।

यही सोचता वैश्य अचानक-
आश्रम पर जब आता है,
अपने जैसा पीड़ित कोई-
और मनुज को पाता है।

• ⁖ ⁘

सुरथ नृपति ने दृष्टि उठाई-
कहा कि भाई आओ तो,
कौन? बन्धु तुम क्यों कर आए-
कुछ तो मुझे बताओ तो?

दोनों ने तब मिलकर अपनी-
सारी व्यथा उगल डाली,
सोने के दिन बीते क्योंकर-
आई घोर निशा काली?

कहा एक ने नृपति सुरथ हूँ-
मारा किस्मत का आया,
नाम समाधि दूसरे नर ने-
रोकर अपना बतलाया।

दोनों जन ने मिलकर उस दिन-
आँसू खूब बहाए थे,
एक तरह की पीड़ा को ले-
दोनों ही जन आए थे।

• • •

यही महामाया का नर्त्तन-
सब दिन जग में होता है,
कभी मदान्ध हुआ हँसता नर-
कभी व्यथित हो रोता है।

हास-रुदन इस सृष्टि-जाल का-
एक महज परिवर्त्तन है,
कण-कण पर माया का अद्भुत-
होता रहता नर्त्तन है।

उसी महामाया के पद पर-
हम सब शीश झुकाते हैं,
वही निवारण कष्ट करेगी-
उसको ही गुहराते हैं।

जयति महामाया! मानव का-
पाप-पक अब दूर करो,
अधकार भय-ग्रस्त हृदय में-
अपना विमल प्रकाश भरो।

सप्तम सर्ग

एक तार है, मानव मन का-
जो नित जोड़े रहता है,
उसी एक के कारण भव में-
सुख-दुख सब का जगता है।

यही तार है माया-निर्मित-
देख न कोई पाता है,
इसके कारण ही सब प्राणी-
चक्र-भ्रमित अकुलाता है।

सूत्रधार है माया केवल-
तार उसी का बन्धन है,
मिलन-वियोग उसी का प्रतिफल-
जीवन का सम्बन्धन है।

किससे किसका तार जुड़ेगा-
कोई कब है जान सका?
धूर्णि-चक्र में आकुल प्राणी-
कब उसको पहचान सका?

अपने अपने में ही सीमित-
दुनिया सोती-जगती है,
अखिल प्रपच उसी का जग में
माया सब को ठगती है।

माया के कारण ही अपना-
यहाँ पराया बनता है,
और पराया अपना बनकर-
एक-सूत्र में बँधता है।

वैश्य समाधि बिछुड़ कर से-
आया वन में त्राण मिला,
राज-पाट से व्यक्त नृपति को-
उसका परिचय-ज्ञान मिला।

दोनों मिलकर लगे सोचने-
सृष्टि बड़ी अनहोनी है,
जो भी मिलती वस्तु, एक दिन-
उसको निश्चय खोनी है।

माया का यह चक्र अहर्निश-
जग में चलता रहता है,
कोई अपने को माया से-
अलग नहीं रख सकता है।

भूतल के कण-कण पर केवल-
वह निर्बन्ध विचरती है,
एक वही है, जो इस जग में-
अपने मन का करती है।

और नहीं तो प्राणिमात्र में-
शक्ति कहाँ है शेष बची,
जीवन केवल ढाँचा ही है-
माटी-भर अवशेष बची।

जयति महामाया इस भव की–
तू ही अम्बे! जननी है,
जग के इस मकड़ी-जाले की–
तू ही करनी-भरनी है।

तेरी ही आज्ञा से भू पर–
माते! सब कुछ होता है,
और नहीं तो एकार्णव में–
मग्न जीव सब सोता है।

जब भी तू पतझड बन आती–
पत्ता-पत्ता गिरता है,
तुझ से ही मधुऋतु भी आती–
भाग्य भुवन का फिरता है।

कहीं भयानक आतप जगता–
कहीं शीत की लहरी है।
कहीं अचानक आकर वर्षा–
घर-आँगन में ठहरी है।

कहीं बयार सुशीतल चलती–
कहीं लपट लू की आती,
कहीं बन्द उन्चास पवन भी
जीवन-दान न दे पाती।

अग्नि कहीं सुख प्रद लगती हैं-
तेज-दीप्त दृग सुखकारी,
कहीं भस्म कर देती अग-जग-
एक तनिक तृण-चिनगारी।

जल है कहीं बना जीवन तो-
बाढ कहीं, तूफान कहीं,
कहीं जटिल जीवन लगता है-
होता है आसान कहीं।

यही महामाया है जिसके-
रूप अनेको दिखते हैं
उसके ही है अक भाग्य में
जो भी पढ्ते-लिखते हैं।

इसकी ही है चाल कि भू-पति-
राज-पाट से त्यक्त हुआ,
वैश्य समाधि विपिन में अपने-
जन से आज विभक्त हुआ।

माया ही है जिसके कारण-
एक हुए दोनों मिलकर
एक साथ हैं दोनों ही जन-
मेधा ऋषि के आश्रम पर।

अपनी-अपनी सब कहते हैं-
मन की व्यथा सुनाते हैं,
देवि महामाया के पद में-
दोनों शीश झुकाते हैं।

  

जयति महामाया इस जग में-
तू ही भाग्य नियन्ता है,
मानव जीवन के सब कष्टों-
की तू माते! हन्ता है।

अष्टम सर्ग

एक भाव में गुँथे मनुज सब-
एक साथ आ जाते हैं,
एक साथ सब मिलकर अपनी-
व्यथा-कथा बतियाते हैं।

वैश्य समाधि बताता था क्यों–
मन में मोह सताता है ?
क्यों आता घर याद, जहाँ से–
मार निकाला जाता है।

उसने कहा कि मैंने था सब–
जन को मन से प्यार किया,
जिसकी जैसी चाह रही, सब–
को ही वह सत्कार दिया।

पत्नी–पुत्र–सुकन्या–भाई–
अपने ही सब वशज थे,
कोई विभिन्न नहीं था, सब जन–
एक ताल के पकज थे।

किन्तु सभी जन अपने–अपने–
रागों में ही लीन रहे,
जीवन में सब अपनेपन में–
सब दिन स्वार्थ–प्रवीण रहे।

जो भी लाता उन्हें खिलाकर–
फिर मैं खाना खाता था,
उनकी हँसी खुशी में ही मैं–
खुलकर मोद मनाता था।

किन्तु अचानक लोभ-ग्रसित सब-
मुझ पर सहसा बरस पड़े,
पूरा धन बस उन्हें चाहिए-
इस पर ही सब रहे अड़े।

जितना दे सकता था उनको-
देकर मैंने शान्त किया,
पर, सब लेकर भी उनका वह-
लालच नहीं समाप्त किया।

सुरसा-सा वह लोभ निरन्तर-
उनका बढ़ता जाता था,
उनके आगे भू-सम्पद का-
मानक ठहर न पाता था।

फल यह हुआ कि मैंने देना-
जैसे ही था बन्द किया,
वैसे ही फिर लगा कि मानो-
सब को ही स्वच्छन्द किया।

कोई मेरा रहा नहीं अब-
सब मेरे विपरीत हुए
[illegible] ही-
मैं शत्रु [illegible] हुआ।

सब ने मुझे निकाला घर से-
सबने दृग से दूर किया,
किसी तरह घुट-घुट मरने को-
सबने ही मजबूर किया।

किन्तु यहाँ जब आप मिले तो-
मन को थोड़ा चैन मिला,
आश्रम के सूनेपन में भी-
लगता मन का कमल खिला।

कुछ तो आप बताएँ मेरे-
वे सबधी कैसे हैं?
पत्नी कैसी, पुत्री कैसी?
पुत्र दुलारे कैसे है?

जिसने जैसा किया, किया मैं-
सब कुछ हूँ अब भूल रहा,
कठिन विपद की घड़ियों में भी-
उनके ही अनुकूल रहा।

आज यहाँ एकान्त विपिन में-
उनकी याद सताती है,
कैसे होंगे वे सबधी-
यही भावना आती है।

कहा सुरथ ने भाई तुम भी-
प्राणी जग के खूब रहे,
आज नहीं जो पास उसी की-
चिन्ता में हो डूब रहे।

जिसने तुम्हें निकाल दिया है-
उसकी कैसी बात भला?
उस अनदेखे पर क्या रोना?
कैसा यह आघात भला?

क्यों होते हो विह्वल उससे
जो अब नहीं तुम्हारा है?
ऐसा गहरा मोह भला क्यों?
मन में मीत[1] सँवारा है?

घने मोह के बाणों से तुम-
वेधो हृदय नही अपना,
बीत गए जो रैन-दिवस वे-
समझो दृग का था सपना।

बोला तुरत समाधि-आपने-
बात सही बतलाई है,
मेरे मन में भी जिज्ञासा-
ऐसी ही उठ आई है।

किन्तु आप भी क्यों विह्वल है-
राज-पाट तो छूट गया ?
जिससे था सबध जहाँ जो-
वह सब तो अब छूट गया ?

कुछ भी पास नहीं है फिर भी-
रह-रह कर अकुलाते हैं,
वह ऐश्वर्य, राज्य, यश सारा-
भूल नहीं क्यों पाते हैं ?

❖ ❖ ❖

होकर दोनों मौन तुरत ही-
अपना शीश नवाते हैं,
देवि महामाया का वन्दन-
मन ही मन दुहराते हैं।

नवम् सर्ग

शक्ति धरा पर सदा एक ही–
अविरल चलती रहती है,
उसी शक्ति से चालित अवनी
अपना रूप बदलती है।

भू-अम्बर भी उसी शक्ति से-
नित परिचालित रहते हैं,
ग्रह-नक्षत्र सभी उससे ही-
जीवन यापन करते है।

सब जीवों की रग-रग तक में-
वही विहँसती दिखती हैं,
जिसको भाग्य मनुज कहते हैं-
स्वय शक्ति ही लिखती है।

यही शक्ति है माया, जिससे-
कुछ भी जग में अलग नहीं,
उसकी प्राज्वल दीप्ति विश्व में-
ज्वाला-सी है सुलग रही।

इसी महामाया के भू-पति-
और वैश्य भरमाए हैं,
त्यक्त हुए सब सम्पति से वे-
घोर विपिन में आए हैं।

छूट गया जो वैभव उसका-
मोह अभी भी बाकी है,
सोच रहे सब व्यथित हृदय से-
सृष्टि बड़ी एकाकी है।

अपने ही अपने में दुनिया-
लीन सदा ही रहती है,
ममता-द्वेष लोभ का मन पर-
भार अहर्निश सहती है।

दोनों जन ही व्यथित हृदय से-
मेधा ऋषि के पास गए,
श्रद्धा पूर्वक शीश झुकाए-
मन में भर विश्वास गए।

सोच रहे थे-मेधा ऋषि का-
फैला अतुल प्रभाव यहाँ,
वे ही शान्त करेंगे चचल-
मन के सारे भाव यहाँ।

यही सोच कर नृपति सग ही-
वैश्य वहाँ पर आया था,
उसके मन का चचल क्रन्दन-
शान्त नहीं हो पाया था।

कहा नृपति ने-महाराज हम-
दोनों किस्मत के मारे
टूट गए हैं अपनों से, ज्यों-
गिरते अम्बर से तारे।

अपना कोई ठौर नहीं है-
प्राण विकल घबड़ाता है,
कैसे हो उपचार हमारा-
समझ न कुछ भी आता है।

छूट गया सब राज हमारा-
पर मन वहीं रमा करता,
कैसी होगी प्रजा हमारी-
चिन्तित मन विह्वल रहता।

राज-खजाना व्यर्थ, हमारे-
शत्रु लुटाते ही होंगे,
मंगल क्षण में अंकित सारे-
नाम मिटाते ही होंगे।

मुझ से जो धरती थी पालित-
आज न जाने कैसी है?
मेरी रम्य सुनगरी की क्या
विरहिन की गति जैसी है?



वैश्य समाधि लगा कहने, मैं-
घर से त्यक्त यहाँ आया,
किन्तु हृदय में घर की चिन्ता-
से रहता हूँ अकुलाया।

जाने कैसी धर्म परायण-
होगी पत्नी अब मेरी ?
जाने कौन बजाता होगा-
वहाँ जागरण की भेरी ?

पत्नी मेरी छूट गयी पर-
मन में करुणा छाई है,
जाने कैसी होगी ? उस पर-
विपद कौन-सी आई है ?

पुत्र और सबधी सारे-
जाने कैसे रहते हैं ?
जाने प्रतिदिन कष्ट अनेकों-
कैसे सब जन सहते हैं ?

∴ ∙∙ ∙

मेधा ऋषि ने कहा-वत्स, यह-
माया का ही फेरा है,
उसके व्याप्त जाल ने ही तो-
अग-जग तक को घेरा है।

यही महामाया है जिसका-
जोर न भू पर थमता है
उसका ही तो रूप अनेकों-
सब जीवों में रमता है।

आओ, प्रथम उसी माया को-
श्रद्धा पूर्वक नमन करें,
उसका विमल प्रकाश हृदय में-
हम सब सादर ग्रहण करें।

दशम् सर्ग

जयति महामाया! यह धरती-
तेरी अनुपम छाया है,
भृग कमल पर जैसे रहते-
तू ने राग रचाया है।

गूँज रही है तेरी ही छवि-
अवनी अम्बर के ऊपर,
उच्च शिखर पर तुम्हीं राजती-
तुम्हीं बिहँसती सागर पर।

मेधा ऋषि ने कहा-भुवन में-
माया ही है शक्ति प्रबल,
इसके ही कारण अन्तर में-
जगती है अनुरक्ति प्रबल।

विषय-मार्ग का ज्ञान सभी को-
अनायास मिल जाता है,
ममता-रूपी जल सिंचन से-
हृदय कमल खिल जाता है।

अलग-अलग हैं विषय सभी के-
किन्तु सभी जन भोगी हैं,
वह चाहे हो अलग-विलग पर-
सब उसके उपयोगी हैं।

कुछ प्राणी है दिन में जगते-
नहीं रात में जगते हैं,
कुछ तो दिनमें मन्द दृष्टि हैं-
रजनी में पर जगते हैं।

कुछ हैं जो दिन रात अहर्निश-
भू पर जगते रहते हैं,
कुछ हैं जो सब भाव हृदय के-
इंगित से ही कहते हैं।

मानव जैसे बुद्धि-ज्ञान से-
रहता है परिपक्व सदा,
उसी तरह पशु-पक्षी का भी-
गनतव्य सदा जीवन में।

मनुज विवेकशील होता है-
सब कुछ सोचा करता है,
इसी तरह कुछ पशुओं में भी-
सहज ज्ञान भी रहता है।

मृग को देखो, सोच-समझ कर-
सदा चौकड़ी भरता है,
निर्भय क्षेत्र जान कर ही वह-
भाव दिखाया करता है।

रहकर स्वय क्षुधा से पीड़ित-
शिशु को अन्न खिलाते हैं,
शिशु भी कोमल भाव हृदय के-
खुलकर सदा दिखाते हैं।

पशु-पक्षी या मानव-जन के-
अन्तर में है भेद नहीं,
करके प्रति-उपकार किसी को-
होता है कुछ खेद नहीं।

यही महामाया का ऐसा-
खेल यहाँ पर चलता है,
भिन्न-भिन्न जीवों में उसका-
अविरल रूप बदलता है।

कोई राग मधुर सुनता है-
वाणी पर मर-मिटता है,
मधुर रूप में किसी मनुज का-
नयन अहर्निश टिकता है।

कोई सुन्दर स्वाद जीभ का-
सदा जुटाता रहता है,
कोई मन की बात सभी को-
सदा सुनाता रहता है।

कोई गाता गीत मिलन का-
कोई दुख का गाता है,
कोई पूरब, कोई पश्चिम-
निशि-दिन आता-जाता है।

जो भी जैसा जहाँ दीखता-
माया से उत्प्रेरित है,
अन्तर तर में बैठी छवि से-
मानव का मन प्रेरित है।

विषय-मार्ग का ज्ञानी नर तो-
विषयों का ही भोगी है,
जिसमें लीन रहा है मन से-
उसका ही सयोगी है।

विषय-ज्ञान है मधुर, किन्तु वह-
सदा रुलाने वाला हैं,
परम मोक्ष की प्राप्ति-दिशा में-
काम न आने वाला है।

: •

करके कुछ उपकार शीघ्र हम-
उसका बदला चाह रहे
इसीलिए हम चिन्ताओं में-
डूबे और तबाह रहे।

पटाक्षेप यह माया का है-
इससे हम सब बचा करें
चचल माया की करनी पर-
कभी न हम सब ध्यान धरें।

माया के इस विकट रूप को-
आओ विनय-प्रणाम करें,
परम तत्त्व के आकर्षण से-
अपना मन अभिराम करें।

एकादश सर्ग

माया ही है व्याप्त भुवन में-
इसके वश सब रहते हैं,
यही अधिष्ठात्री है सब की-
प्राण इसी में बसते हैं।

कहा नृपति ने- भगवन् ! मुझको-
आप कृपा कर बतलाएँ,
जिन्हें महामाया कहते, वे-
कौन? हमें कुछ समझाएँ।

उसका आविर्भाव हुआ क्यों?
वह चरित्र सब कैसा है?
वह स्वरूप बतलाएँ हमको-
कह दें जो भी जैसा है।

हमें बताएँ कैसे जग में-
उनका प्रादुर्भाव हुआ?
कैसा दिव्य चरित है उनका?
कैसे विमल प्रभाव हुआ?

सब कुछ ऋषिवर के श्री मुख से-
सुनना हम सब चाह रहे,
माया के इस अभिनन्दन से-
मन में तनिक न दाह रहे।

सब प्राणी हैं भौतिकवादी-
मग्न स्वयं में रहते हैं,
अपने कर्म-कुकर्मों का ही-
भार हृदय पर सहते हैं।

माया का जो रूप अलौकिक-
देख नहीं हम पाते हैं,
माया के बन्धन में सब दिन-
लिपटे ही रह जाते हैं।

ऋषिवर बोले- अधीश्वरी है-
वही महामाया सब की,
सब बन्धन का कारण वह है-
वही मुक्ति-जाया सब की।

नित्य-स्वरूपा सनातनी है-
सब कुछ रूप उसी का है,
यह समस्त जो विश्व दीखता-
व्याप्त उसी ने रक्खा है।

जन्म-मरण का कारण वह है-
वही ज्ञान की धारा है,
वही एक है जिसने देवों-
को भी सदा उबारा है।

मानव की क्या बात चराचर-
उसके वश में रहते हैं,
जैसा जो वह चाह रही बस-
वैसा ही सब करते हैं।

उससे अलग नहीं कुछ जग में-
जिस पर हम विश्वास करें,
उसे समझकर ही हम उठने-
का कुछ नवल प्रयास करें।

माया ने ही महागर्त में-
तुमको आज गिराया है,
इसी लिए जो छूट गया है-
उस पर मन भरमाया है।

ममता मय इस घोर भँवर में-
तुम सब डूब रहे क्षण-क्षण,
कितने तो जीवन भर पडकर-
करते रहते हैं क्रन्दन।

इसमें कुछ आश्चर्य न समझो-
माया ही बलशाली है,
उसके आगे नहीं किसी की-
कुछ भी चलने वाली है।

ज्ञानी का भी चित हर कर वह-
मोह-अध कर देती है,
बलपूर्वक इस निखिल सृष्टि से-
प्राप्य आप ही लेती है।

यह सम्पूर्ण चराचर उसकी-
अद्‌भुत-पावन रचना है,
उसके ही आधार क्षेत्र में-
सब जीवों को रहना है।

उससे कुछ भी अलग न समझो-
सब पर उसकी छाप सजग,
जो भी स्वर हम सुनते सब हैं-
उसकी पग-ध्वनि सहज-सजग।

किन्तु महामाया ही नर का-
करती भी उद्‌धार सदा,
उसके कारण ही मिटता है-
बन्धन का ससार सदा।

यही महामाया जब नर को-
देती है वरदान विमल,
भूतल पर नर श्रेष्ठ मनुज बन-
पाता है सम्मान विमल।

नित्य स्वरूपा इस देवी की-
गाथा तुम्हें सुनाता हूँ,
विष्णुदेव की योग-नींद की-
बातें तुम्हें बताता हूँ।

नाभि कमल पर बैठे विधि भी-
अनायास जब काँप उठे,
किस प्राणी में शक्ति भला जो-
उसके तनिक विरुद्ध उठे।

यही परा-विद्या है आओ-
मन से इसे प्रणाम करें,
यही देवि अब सब जीवों का-
सिद्ध भुवन में काम करें।

द्वादश सर्ग

जीवन में फूलों का वर्षण-
चाह रहे सब यह आकर्षण,
    किन्तु महामाया के कारण-
    होता रहता नित संघर्षण।

विष्णु योग निद्रा में सोये-
माया में ही थे जब खोये-
सहसा उनके श्रवण-मैल से
मधु-कैटभ उपजे ज्वाला से।

दोनों थे विख्यात दनुज बल-
किया सृष्टि को क्षण में चचल!
कमल-नाल पर विधि को देखा-
अपना अद्‌भुत शौर्य परेखा।

चाहा, विधि का वध ही करना-
उन्हें किसी से कब था डरना?
कमल नाल की डोरी धर कर
कर्म अपावन को थे तत्पर।

स्वय प्रजापति ब्रह्मा क्षण में-
लगे कॉपने अपने मन में,
विष्णु-देव भी निद्रा में थे-
माया-वश ही तन्द्रा में थे।

निद्रा रूपिणी माया को ही-
देख न पाए थे सुर-द्रोही!
वे तो मद में थे भरमाते-
कुछ भी थे वे देख न पाते!

विधि ने देखा, माया कारण-
विष्णु देव हैं निद्रित इस क्षण,
विलग महामाया से होकर-
ही जग सकते हैं वे सत्वर।

विधि ने माया को ही हेरा-
विनयित स्वर में उसको टेरा।
विनय सुनाई अन्तस्तर से-
विगलित मन औं भाव प्रखर से।

कहा कि माये। तुम हो स्वाहा-
तुम हो रूप-स्वस्ति मन चाहा।
जीवन में पीयूष तुम्हीं हो
घन-तम में प्रत्यूष तुम्हीं हो।

तुम्हीं साध्य, सावित्री, जननी,
तुम्हीं जगत की सागर-तरणी।
जगन्मयी तुम लोक-धारिणी,
अन्ध-कूप से तुम्हीं तारिणी।

तुम्हीं सृष्टि रूपा हो अम्बे,
पालन करत्री माँ जगदम्बे।
तुम्हीं देवि कल्पान्त तमी का-
करती हो सहार सभी का।

सृष्टि-रूपिणी पालन करती,
काल-रूपिणी-उत्पति हरती।
सत्-रज-तम में तुम्हीं समाहित-
बुद्धि तुम्हीं पर रहती आश्रित।

खड्ग-धारिणी, शूल धारिणी-
तुम हो माते! तिमिर-हारिणी।
वाण-भुशुण्डि परिघ हैं तेरे-
अस्त्र शस्त्र सब साँझ-सबेरे।

सौम्य-सौम्यतर तुम हो भू पर-
सुन्दरता का रूप प्रखर-तर।
सर्व स्वरूपे माते तुम हो-
सत् में और असत् में तुम हो।

विष्णु देव माँ! तेरे वश में-
तेरी माया-नींद-विवश में।
मुझको, शिव को और विष्णु को-
वपुष पिन्हाया तुमने सब को।

देवि! प्रार्थना करनी तेरी-
लगती सचमुच बड़ी अनेरी।
माते! हमको इतना वर दो-
मधु- कैटभ को मोहित कर दो।

विष्णु देव को तनिक जगाओ–
हम सबको माँ अभय बनाओ।
असुरों का संहार करेंगे–
विष्णु हमारा कष्ट हरेंगे।

यही प्रेरणा उन में भर दो–
माते! हम सब को शुभ वर दो!
सहसा तमोगुणी वह माया–
विधि–समक्ष था रूप दिखाया।

विष्णु देव के तन से जैसे–
माया निकली क्षण में वैसे!
मुक्त योग निद्रा से होकर–
जगन्नियता जगे शुभकर।

मधु–कैटभ भी मद में माते–
भीषण गर्जन–शोर मचाते!
विष्णु देव से भिडे अकड़कर–
पर माया के वश में पड़कर–

कहा विष्णु से–वीर तुम्हारी–
अतुल वीरता है बलिहारी!
हम प्रसन्न हैं तुम वर ले लो–
जो चाहो वह सत्वर ले लो।

विष्णु देव तब बोले-आओ-
मुझ से दोनों मारे जाओ।
मधु-कैटभ ने कहा-वही हो-
किन्तु जहाँ पर मही नहीं हो-

वहीं हमें मारो तुम हँसकर-
हम आरूढ़ सदा निज स्वर पर,
विष्णु देव ने जघा पर धर-
काट दिए दोनों के ही सर।

यही महामाया है भू पर-
भजते जिसको हम सब जी भर।
जयति महामाया फिर आओ-
आर्त्त-जनों का कष्ट मिटाओ।

त्रयोदश सर्ग

ऋषि ने शीश झुकाया क्षण भर-
मन में माता का सुमिरन कर
फिर बोले वे-महिषासुर का-
देवी ने वध किया असुर का।

यही कथा तुमको बतलाता-
बडी दिव्य है, तुम्हें सुनाता,
पूर्व काल में बड़ा भयकर-
था वह देवासुर का सगर।

महिषासुर असुरों का स्वामी-
घोर अपावन उद्धत कामी-
देवों को था किया पराजित,
सभी हुए थे उसके आश्रित।

विजय प्राप्त कर चलता ऐंठा-
इन्द्रासन पर जाकर बैठा,
सभी देव-गण डरे-डरे थे-
करुणा विगलित भरे-भरे थे।

सूर्य-इन्द्र औं सभी देवता-
देख रहे थे कठिन विषमता,
सब का ही अधिकार छीनकर-
महिषासुर था सबसे ऊपर।

दिया सभी को स्वर्ग-निकाला-
मन से था वह दुर्धर काला!
सभी देवता भू पर आकर-
समय काटते शीश झुकाकर।

सब अपमानित से रहते थे
ग्लानि व्यथा भीषण सहते थे।
उनमें कोई शक्ति नहीं थी-
उनकी आँखे लगी कहीं थी।

एक दिवस सब देव पराजित-
हरि-हर सम्मुख हुए उपस्थित,
आगे-आगे स्वय विधाता
आए कहने सारी गाथा।

विष्णु और शकर के सम्मुख-
कहा सभी ने अन्तर का दुख।
सुनकर भौंहें तनी विष्णु की-
अन्त हुई ताकत सहिष्णु की।

विष्णु देव के मुख से निकला-
एक तेज अति ज्योतिर्चपला,
तत्पश्चात सभी देवों से-
तेज प्रवाहित थे वेगों से।

तेज पुञ्ज वह देवि-स्वरूपा-
हुई उपस्थित रूप अनूपा
सब देवों ने आज समर्पित-
करके किया उसे था भूषित।

ज्वालामय वह रूप शिखर था-
पर्वत जैसा उन्नत सर था,
रूप अलौकिक अतुलनीय था-
सभी तरह से वन्दनीय था।

अट्टहास वह लगी सुनाने-
अपना दीपित तेज दिखाने,
जिससे था त्रैलोक काँपता-
उधर न कोई तनिक ताकता।

कहा सभी ने सिंहवाहिनी-
देवि भवानी शक्ति दायिनी,
सदा तुम्हारी भू पर जय हो-
तेरी सब महिमा अक्षय हो।

सुनते सहसा महिषासुर भी-
झपट पड़ा उस देवी पर ही,
फिर तो भीषण युद्ध हुआ था-
लगा- काल ज्यों क्रुद्ध हुआ था।

असुर भयकर उठते आते-
किन्तु न कोई थे वच पाते,
तड़-तड़ पत्थर लगे वरसने-
जन-जन के दिल लगे धड़कने।

भिड़े हुए थे दैत्य भयकर-
अपने-अपने दल ले-लेकर।
कोई शूल-कृपाण लिए था,
कोई मुद्‌गल-बाण लिए था।

उनके घातक अस्त्र-शस्त्र थे-
दौड रहे सब यत्र-तत्र थे,
फरसा कर मैं फहर रहा था-
युद्ध नगाड़ा घहर रहा था।

हिस्र-जन्तु चिग्घाड़ रहे थे-
थर-थर काँप पहाड़ रहे थे,
आसमान तक धूल भरी थी-
धुध दिशाओं में गहरी थी।

बड़ा भयकर कोलाहल था-
अम्बर तक में शोर प्रबल था,
दैत्य चीखते हरक्षण ऐसे-
महा प्रलय के हों घन ऐसे।

देव-दनुज सब भिड़े हुए थे-
भीषण रण से जुड़े हुए थे
करते थे सब मार भयकर
एक-एक पर उछल-उछल कर।

बरस धरा पर कहर रहे थे-
अनगिन मुर्दे बिखर रहे थे,
कीच रक्त का बना हुआ था,
भूतल सारा सना हुआ था।

कितनों के तन कटे-छटे थे-
लाशों से मैदान पटे थे,
जाघ किसी की कटी गिरी थी-
बाँह किसी की कहीं पड़ी थी।

भीषण तम सग्राम छिड़ा था-
दैत्य-देव से क्रुद्ध भिड़ा था,
महिषासुर की सेना सारी
गयी देवि से ही सब मारी।

उसके पन्द्रह दृढ सेनानी-
चिक्षुर, चामर, दुर्मख, मानी,
एक-एक सब मरे वहीं पर-
दैत्य अपावन घोर भयकर।

महिषासुर भी रूप बनाकर-
तरह-तरह का आया सत्वर!
किन्तु भवानी के ही कर से-
मुक्त हुआ वह दानव धड़ से।

उसके मरते सभी दैत्य-गण-
भागे रण से ही सब उस क्षण,
होकर देव सभी हर्षित मन-
किया देवि का मन से वन्दन।

स्वर्ग लोक ने खुशी मनाई-
घर-घर बजने लगी बधाई!
जयति भवानी तेरी जय हो।
माँ का भू पर यश अक्षय हो!!

चर्तुदश सर्ग

जय जगदम्बे। जय-जय-जय माँ।
भद्रकालिनी शक्ति अभय माँ।
दैत्य-विनासिनी देव-रक्षिणी।
शक्ति अपरिमित शत्रु-भक्षिणी।

जय-जय काली दुर्गा माता।
अभय दायिनी तेरी गाथा।
ऋषिवर बोले-राजन्, भू पर-
महिषासुर था बड़ा भयकर।

किन्तु मरा जब-शान्त हुआ जग-
फैली खुशी धरा पर पग-पग।
इन्द्र-सूर्य सब देव पधारे-
माँ के सम्मुख दृश्य सँवारे।

सबने अपना शीश झुकाकर-
वन्दन-गीत सुनाए सस्वर।
पुलकित तन था नयन भरे थे,
सभी देवता वहीं खड़े थे।

बोल उठे सब-शक्ति समुच्चय,
देव-गणों की भक्ति समुच्चय।
महिमा तेरी विशद धरा पर-
व्याप्त उसी से सृष्टि चराचर।

सतों-मुनियों की पूज्या तू।
सब प्राणी की जाया-माँ तू।
नमस्कार हम करते हैं माँ।
भक्ति हृदय में भरते हैं माँ।

पुण्य पुरुष में लक्ष्मी-रूपे-
पापी में दरिद्रता रूपे-
तुम्हीं निवास किया करती हो।
शुद्ध हृदय में यश भरती हो।

सत्य पुरुष में श्रद्धा बनकर-
लज्जा-रूप कुलीन हृदय पर-
रहकर सब का पालन करती।
कष्ट विपुल संसृति का हरती।

देवि अचिन्त्य स्वरूप तुम्हारा-
सब जीवों का बना सहारा,
तेरा अतुल प्राक्रम अद्भुत-
भूतल पर था अब तक अश्रुत।

सत-रज-तम सब वहा भरे हैं,
दिशा-दिशा में रूप खड़े हैं।
कहीं दोष का नाम नहीं है
दुष्टों को आराम नहीं है।

हरि-हर भी तो पार न पाते-
अंश-भूत जग सब समझाते,
परा-प्रकृति हो तुम्हीं जगत में-
परम-तृप्ति हो तुम्हीं भगत में।

मोक्ष-प्राप्ति की तुम हो साधन-
महाव्रतों की शुभ आराधन।
शब्द-स्वरूपा रूप तुम्हारा-
वेदों ने है जिसे पुकारा।

सार शास्त्र का तुम हो केवल-
मेधा शक्ति तुम्ही हो निर्मल,
तुम आसक्त नहीं हो किंचित-
सब कुछ तुम में ही है सचित।

विष्णु हृदय में लक्ष्मी-रूपिणी-
शकर के मन गौरि-रूपिणी-
तुम्हीं चराचर की हो माता-
तुझ से ही सब होता-नाता।

जिस पर देवि प्रसन्न रही है-
सुख की धारा वहाँ बही है।
उसे प्राप्त यश होता सारा-
जिसने तुझको तनिक पुकारा।

देवि मनोवाछित फल देती-
कष्ट सभी का खुद हर लेती,
दुष्ट दनुज भी तुझ से लड़कर
स्वर्ग गए है तुझ से मरकर।

देवि तुम्हीं वरदायिनि माता
अन्त न तेरा कोई पाता
एक तुम्हीं पर सबकी आशा-
देवि टिकी है सब अभिलाषा।

नमन हमारा ग्रहण करो माँ,
ज्योति हृदय में विमल भरो माँ,
करो हमारी सभी तरह से-
रक्षा अपने खड्ग-परिघ से।

पूरब-पश्चिम-दक्षिण-उतर-
सभी दिशा में रक्षा तू कर,
रक्षित हो भू-लोक समूचा-
रहे शीश सतों का ऊँचा।

जय-जय देवी, जय जगदम्बे।
निखिल सृष्टि की धारक अम्बे।
देवों ने जय वन्दन गा के-
नन्दन-वन के फूल चढा के।

पूजन किया देवि का अभिनव-
भक्ति-भाव से भर कर नव-नव।
मुग्ध हृदय से देवी बोली-
वर देने को झोली खोली।

देव-गणों! अब आओ, माँगो-
जो अभिलाषा हो लो, जागो,
मैं प्रसन्न हूँ सब हर्षाओ,
जग-रक्षण में हृदय लगाओ।

कहा देवताओं ने झुककर-
देवि करो तुम इतना ही भर,
करें जहाँ हम स्मरण तुम्हारा-
दर्शन का हो प्राप्य सहारा।

कह 'तथास्तु' वह देवी क्षण में-
अन्तर्धान हुई पलभर मे,
जयति महामाया जय अम्बे।
जय-जय-माते जय-जय जगदम्बे।।

पचदश सर्ग

मेधा ऋषि ने कहा कि राजन्
सुनो महामाया का वर्णन–
    पुन तुम्हें मैं समझाता,
    कैसी माँ की शक्ति बताता।

शुम्भ-निशुम्भ हुए दो भीषण-
दैत्य धरा पर जग-उत्पीड़न।
पराक्रमी थे दोनों दानव,
इनसे सब का हुआ पराभव।

इनके बलका पार नहीं था-
रिपुओं का उद्धार नहीं था।
जहाँ चाहते चढ जाते थे,
नष्ट सृष्टि सब कर जाते थे।

देवराज पर दोनों आ के-
बोले धावा अस्त्र सजा के,
सभी देवता हार गए थे,
स्वर्ग-लोक से भाग गए थे।

राज्य इन्द्र से छीन लिया था,
कष्ट सभी को विपुल दिया था
यज्ञ-भाग भी लगे हड़पने-
लगे देवता थर-थर कँपने।

स्वर्ग छोड सब आए भू पर-
कष्ट उन्हें था बड़ा भयकर।
लेकर के अधिकार सभी का-
करते शासन क्षुब्ध मही का।

सूर्य-चन्द्र-यम-वरुण-चन्द्रमा-
इन्द्र देवता औ' यह ब्रह्मा,
राज्य-भ्रष्ट हो उससे पालित-
होकर रहते थे अपमानित।

•• ⁘ ⁘

एक दिवस सब हिमगिरि आए,
दुखी, मलिन-मन, शीश झुकाए-
अपराजिता देवि को जयकर-
लीन हुए सब मन में सत्वर।

देवि विष्णु माया का वन्दन-
किया सभी ने मन से उस क्षण,
प्रकट पार्वती हुई वहीं पर-
पूछा यह क्या वन्दन भास्वर।

इतने में ही उनके तन से-
शिवा-शक्ति निकली उन्मन से,
बोली-मेरा है अभिनन्दन
सभी देवता करते वन्दन।

असुर शक्ति से देव पराजित-
सभी प्रकार हुए अपमानित,
देव-समूह वहाँ आया था,
सबका ही मन घबड़ाया था।

देवि कौशिकी मोद भरी थी
अपनी प्रभा बिखेर रही थी
उसने पहले वचन दिया था,
त्राण करेगी यही कहा था।

वही वचन वह निभा रही थी-
दैवी प्रतिभा दिखा रही थी,
इतने में दो भृत्य दनुज के-
शुम्भ-निशुम्भ महा दैत्यों के।

आए थे हिमवान शिखर पर-
देखा, कोई देवि उतर कर,
अपनी विभा बिखेर रही है,
उसकी छवि से दीप्त मही है।

अद्‌भुत था वह रूप अलौकिक-
ऐसा कहीं न दिखता ऐच्छिक,
सोचा असुर-राज के हित ही-
होगी यह तो भेंट उचित ही।

चण्ड-मुण्ड कुछ बनकर भोले-
शुम्भ-निशुम्भ पास जा बोले-
महाराज। इक अबला मनहर,
आई है हिमगिरि के ऊपर।

उसकी शोभा अतुलनीय है,
सभी तरह सुग्रहणीय है,
आप सभी रत्नों के स्वामी,
असुर राज हैं भव के कामी।

नारी में जो रत्न-स्वरूपा-
प्रकट हुई हैं रूप-अनूपा,
उस पर भी अधिकार करें अब,
अतुल रत्न से हृदय भरें अब।

कहा शुम्भ ने सिद्ध भृत्य से-
अपने प्रिय सुग्रीव दूत-से,
जाओ, उस नारी को लाओ,
उसको मेरा यश बतलाओ।

कहना उसको मान मिलेगा,
असुर-राज सब वैभव देगा।
दूत तुरत आया हिमगिरि पर-
जहाँ प्रकट थी देवी मनहर।

कहा दूत ने प्रखर रूपिणी-
होगा अब कल्याण मोहिनी।
शुम्भ-निशुम्भ असुर नृप ने ही,
तुरत बुलाया है बन स्नेही।

उनके जैसा बल पौरुषमय-
कोई भी है नहीं निरामय,
उससे बाले! ब्याह रचाओ,
सब ऐश्वर्य भुवन का पाओ।

कहा देवि ने-बात तुम्हारी-
सच है, वह नृप है बलिहारी,
मेरा भी पर अपना प्रण है,
मेरा जीवन अनुपम रण है।

जो भी मुझको हरा सकेगा-
गर्व मान सब मिटा सकेगा-
उसको ही अपनाऊँगी मैं,
उससे ब्याह रचाऊँगी मैं।

जाओ, कहना असुर-नृपति से-
पा लें मुझको स्वय शक्ति से,
शूरवीर हैं रण में आएँ,
मुझको बल से ही अपनाएँ।

कहा दूत ने-गर्व तुम्हारा
मिट जाएगा क्षण में सारा,
नारी हो मत दर्प दिखाओ
असुर-राज को तुम अपनाओ।

कहा देवि ने- अब हो जैसा,
सह लूँगी मैं सब कुछ वैसा,
लेकिन प्रण मैं छोड़ न सकती,
हठ जीवन में तोड़ न सकती।

जाओ अपने नृप को लाओ,
उनको सारी बात बताओ,
दूत गया तब देवी बिहँसी-
सर में जैसे खिलती सरसी।

❖ ❖ ❖

जयति-जयति देवि जगदम्बे।
भुवन-रक्षणी हो तुम अम्बे।
देवों को सरसाने वाली-
तेरी महिमा बड़ी निराली।

षष्ठदश सर्ग

जय-जय काली, दुर्गे अम्बे।
जगत रक्षिणी, माँ जगदम्बे।
सादर शीश नवाता हूँ माँ।
तेरी महिमा गाता हूँ माँ।

हिमगिरि से सुग्रीव पधारा–
दैत्यराज का दूत दुलारा।
आकर उसने कहा कि राजन
बाला है गर्वीली भीषण।

उसका गर्व मिटाना होगा,
उसे महल में लाना होगा,
मैंने सारी बात बताई
कीर्ति आपकी सब समझाई।

कहा कि दैत्यराज से ऊपर–
कोई आज नहीं है भू पर,
यश प्राप्त गुणवान नृपति से–
ब्याह रचाओ देवि सुमति से।

इसमें है कल्याण तुम्हारा।
दिव्य प्रतिष्ठा–मान तुम्हारा।
आओ, मेरी बात मान लो–
सच कहता हूँ, देवि जान लो।

और नहीं तो तुम्हें पकड़कर–
ले जाएँगे दूत अकड़ कर।
कुछ भी तब तुम कर न सकोगी–
केवल पश्चाताप करोगी।

बाला ने पर गर्व दिखाया-
स्वय आपको नीच बताया।
रूपवती वह है अभिमानी,
बड़ी तेज है उसकी वाणी।

बोली-मैं यों नहीं चलूँगी-
अपने हठ पर अड़ी रहूँगी।
मेरा प्रण है मुझे हराओ,
तभी शक्ति से मुझको पाओ।

दैत्यराज को कह दो, जाओ,
व्यर्थ नहीं यों समय गँवाओं।
मुझे चाहता जो अपनाना-
उसको होगा शौर्य दिखाना।

इसी तरह की बात अनेकों-
बोल गयी वह समझाने को।
अपने हठ पर अड़ी हुई हैं,
कठिन धार पर चढी हुई है।

ऐसी अतुल घमण्डी नारी-
है प्रचण्ड भीषण चिनगारी
उसको सबक सिखानी होगी-
उसे राह पर लानी होगी।

हमने पूरा मान दिया है-
उसने पर अपमान किया है-
यह सहने की बात नहीं है-
यह छोटा आघात नहीं है।

दैत्य वश की सकल प्रतिष्ठा-
मान-गर्व-यश पूरी निष्ठा,
आज हुई कितनी अपमानित-
इसको समझें राजन्, निश्चित।

केश-पकड़ कर उसे बुलाएँ,
अपनी लज्जा आप बचाएँ।
करें चूर्ण सब उसका गौरव,
तभी वहाँ अब होगा उत्सव।

इसी तरह की बात बनाकर-
कहा दूत ने बढ़ा-चढ़ा कर।
सुनकर दैत्यराज गुर्राया,
कुपित भयकर वह हो आया।

लाल-लाल उसकी आँखों से-
मन की विह्वल दृढ पाँखों से,
लगी भयकर आग बरसने,
लगा काल-सा तब वह हँसने।

शीघ्र धूम्रलोचन भी आया-
उसको नृप ने सब समझाया,
कहाकि तुम ही सेनापति हो,
दैत्यराज की दृढ तम मति हो।

जाओ उसे पकड़ कर लाओ,
उसका सब अभिमान मिटाओ!
बलपूर्वक तुम झोंटा धर कर-
उसे खींच कर लाना दर पर।

सेनापति ने सैन्य सजाया-
उसे साथ ले गिरि पर आया,
आते ही ललकारा उसने-
कसकर खूब पुकारा उसने।

कहा कि बाले। बात मान लो,
बहुत कठिन परिणाम जान लो!
दैत्यराज अब कुपित हुए हैं
अन्तर-तर से क्षुभित हुए हैं।

तुम्हें पकड कर ले जाना है-
निश्चय यह कर दिखलाना है
साथ चलो तो मान रहेगा,
और नही धिक्कार मिलेगा।

असुर धूम्रलोचन ने कह कर–
हाथ बढाया जैसे उस पर,
किया देवि ने हु उच्चारण–
भस्म दैत्य हो गया उसी क्षण।

फिर तो सेना भिड़ी भयकर,
वहाँ लड़ाई छिडी भयकर।
देवी–वाहन सिह गरज कर–
टूटा दुश्मन की छाती पर।

पर्जों से ही मार–मार कर–
उसने पटके सारे निशिचर,
उसके जबड़ों में ही पड़के–
मेरे अनेकों उससे लड़के।

मरी असुर की सारी सेना
पड़ा सभी को जीवन देना!
बची–खुची सेना थी भागी
हिमगिरि पर कुछ खुशिया जागी।

सुना शुम्भ ने असुर मरे हैं,
शव से ही मैदान भरे हैं,
कठिन कोध था उसमें जागा,
उसने अपना आपा त्यागा।

चण्ड-मुण्ड को झट बुलवाया,
उसने उनको सब समझाया,
कहा घमण्डी को घर लाओ,
मेरी ताकत उसे दिखाओ

∴ •

देवि महामाया के कारण,
होते रहते सब परिरम्भण।
यही सभी का दर्प मिटाती
सात्विक जन का मान बढाती।

राजन्! उसकी जय-जय गाएँ,
उसके आगे शीश झुकाएँ।
पूर्ण करे वह सब अभिलाषा
उस पर ही है सबकी आशा।

सप्तदश सर्ग

सदा महामाया ही जग में-
जाग्रत रहती जीवन-मग में,
उसकी गति चलती है अविरल,
वही सृष्टि में रहती अविकल।

चण्ड-मुण्ड अब रण में आए,
आकर भीषण शोर मचाए।
अस्त्र-शस्त्र से सब सज-धज कर-
ले चतुरगी सैन्य भयकर।

गिरिराज हिमालय पर सब आए-
अपने बल से थे अकुलाए।
देवि सिह पर बैठी विमला,
मन्द-मन्द मुस्काती चपला।

उसे देखकर दैत्य अमर्षित-
हुए पकडने को सब उत्थित,
धनुष-तीर-तलवार सँभाले-
दौडे दैत्य सभी मतवाले।

स्वय अम्बिका कुपित हुई थी-
कुटिल भौंह अति असित हुई थी,
उसके विकटानन से प्रकटी-
थी विकराल मुखी काली ही।

प्रकट कालिका खड्ग-धारिणी-
नर मुण्डों की हार-कारिणी।
मुख विशाल जिह्वा थी लप-लप-
थी डरावनी शोभा दप-दप।

लाल-लाल आँखों में ज्वाला
गूँजा स्वर दहलाने वाला,
बड़ा भयकर रूप विभाषित-
हुआ शैल पर वहाँ उपस्थित।

टूट पडी दैत्यों पर काली-
भक्षण करने को विकराली।
जिसको पाती खा जाती थी-
कच्चा उन्हें चबा जाती थी।

दैत्य सभी अकुलाए भू पर-
गिरे तुरत सब प्राण गँवा कर,
सेना सारी मरी पडी थी-
काली सम्मुख वहीं खड़ी थी।

चण्ड-मुण्ड अब दौड़े आए-
भीषण-भीषण शस्त्र चलाए,
किन्तु स्वय काली ने तत्पर-
मार मिटाया उन्हें वहीं पर।

दोनों के मस्तक को लेकर-
स्वय चण्डिका को ही देकर,
बोली काली-भेंट तुम्हारी,
लेकर आई हूँ असुरारी।

अम्बे। अब सब काम सँभारो-
शुम्भ-निशुम्भ दैत्य को मारो,
देव विकल हैं उन्हें बचाओ,
सत-चित की नव जोत जगाओ।

तब बोली चण्डी कल्याणी-
स्वय सजाकर मधुरी वाणी,
चण्ड-मुण्ड का सिर तू लाई,
देवों का सब काम बनाई।

इसीलिए यह भाव हमारा-
चामुण्डा हो नाम तुम्हारा,
इसी नाम की ख्याति बढेगी,
तुझको दुनिया सिर पर लेगी।

चण्ड-मुण्ड जब मरे धरा पर-
हर्षित देव हुए थे जी भर,
सब ने जय के शख बजाये,
जयति चण्डि के। मिलकर गाये।

• • •

असुर-राज अब बहुत कुपित था-
महारोष के ही आश्रित था,
उसने सेना बड़ी सजाकर
भेजी थी रण में झुझलाकर।

तरह-तरह का जाल बिछाया-
सब सैनिक को था समझाया,
दैत्य-गणों में था जो भी बल-
आज दाँव पर था सब सम्बल।

सभी देवता देख रहे थे-
उनके भी दृग ज्वाल बहे थे।
सब ने मिलकर युद्ध किया था-
अपना पूरा योग दिया था।

स्वय अम्बिका के ही तन से-
निकली थी शिवदूती मन से,
उसे चण्डिका ने समझाया-
दूत बनाकर उसे पठाया।

कहा दैत्य-नृप को समझाओ,
युद्ध-विरत हो उसे बताओ।
इसमें है कल्याण सभी का-
मान और अभिमान सभी का।

• •

ऋषिवर बोले-यह है लीला-
माया रखती हृदय सजीला,
चाहे कुछ भी ज्ञात न हो,पर-
हरदम यह रहती है तत्पर।

उसका ही बल दिग्दिगन्त में-
सदा रहेगा सृष्टि अन्त में,
मति-गति उससे ही चलती है-
ज्योति तिमिर में भी जलती है।

उस पर ही है अग-जग आश्रित-
उसका होता कर्म समन्वित,
इसको कोई टाल न सकता,
नहीं किसी की उससे समता।

आओ, उसकी जय दुहराएँ-
अपने को हम शुद्ध बनाएँ।
गाओ, जय-जय-जय जगदम्बे।
करुणा-कारिणी जय-जय अम्बे।।

अष्टदश सर्ग

कुपित हुआ असुरेश हृदय से-
वड़ा प्रकम्पित था जन भय से,
उसने भीषण रोष दिखाया,
सैन्य भयकर था भिजवाया।

सात भयकर सेना नायक-
चले भयानक लेकर सायक,
सब के सब भीषण उद्धत थे,
निष्ठुर घातक रण में रत थे।

दैत्यराज ने इन्हें पठाकर-
सोचा ये ही काम बनाकर-
पास तुरत ही आ जायेंगे,
धोखा कभी नहीं खायेंगे।

इनमें भीषण शक्ति भरी है,
इनके कर पर आग धरी है,
ये तो सब कुछ खाक करेंगे,
सब का बदला ये ही लेंगे।

अब तक सारी सेना हारी-
वह तो सब की थी लाचारी,
अब फिर वैसा नहीं चलेगा
इनसे ही सब काम बनेगा।

ये सातों हैं उद्भट-दुर्धर-
शौर्य-शक्ति में सब से ऊपर,
इन पर आशा टिकी हुई है,
सब अभिलाषा रुकी हुई है।

विष्णु देव की वैष्णव-रूपा-
नरसिही वाराह अनूपा,
सभी देव की शक्ति-विभाषित,
रण में थी वह स्वय प्रकाशित।

सबने दैत्यों को ललकारा,
उनके कर्मों को धिक्कारा,
फिर तो भीषण बाण चले थे
शक्ति अपरिमित तान चले थे।

युद्ध भयानक लगा दहकने-
ज्वाला-सा चहु ओर बहकने।
भू-अम्बर तक शोर भरा था-
दिक्-दिक् सब कुछ डरा-डरा था।

भीषण तम आघात हुआ था,
भू पर उल्कापात हुआ था।
कठिन घड़ी थी भीषण-दुर्दम,
रक्त रगों में जाता था थम।

घोष मरण का गूज रहा था,
खून दनुज-दल विपुल बहा था,
दैत्य भयकर गरज रहे थे,
ज्वाल धरा पर बरस रहे थे।

रण-चण्डी ने मारा सबको,
किया अवदित सारे भय को,
देवी की सब शक्ति वहाँ पर-
जाग्रत थी नव रूप बढ़ा कर।

दनुज शक्ति अब निष्प्रभ-सी थी-
महा अमंगल उत्प्रभ-सी थी,
महाकाल घहराकर क्षण-क्षण-
करता था मन में उत्पीड़न।

नहीं किसी को ठौर मिला था,
सब पर आतंक पड़ा शिला था,
प्राण सभी के व्यथित-विकल थे
सब के पौरुष हुए विफल थे।

दैत्यराज की पूरी सेना,
महाकाल की बनी चबेना,
दैत्य दिवगत होते जाते-
जो भी रण में सम्मुख आते।

देवों की वह शक्ति-रूपिणी,
बनी हुई थी दैत्य-भक्षिणी।
शक्ति विभिन्न रूपों में आकर,
करती थी सब काम भयंकर।

कोई दनुज न बच पाता था,
प्राण सभी का ही जाता था, -
चक्र अहर्निश चलता रहताता।
स्वय काल था वहाँ विहँस

❖ • ••

ऋषिवर बोले-राजन् देखो,
माया की क्या शक्ति परेखो।
भव में उससे आगे बढ़कर,
कोई नहीं रहा है चढ़कर।

सब उससे ही तो हैं आते,
और उसी में फिर मिल जाते।
जयति महामाया की बोल लो।
उससे मिलकर उसके हो

तभी तुम्हें कल्याण मिलेगा-
अन्तर तर का बन्ध खुलेगा।
जयति महामाया की जय-जय।
माते। करो, भुवन को निर्भय।

एकोनविंश सर्ग

दैत्यराज था रण में उद्धत,
पौरुष-बल से होकर उन्मत,
उसका गर्व-गुमान बढ़ा था,
सिर पर मानों काल चढ़ा था।

उसी समय शिव-दूती आई-
चण्डी का सदेशा लाई,
बोली-यदि कल्याण चाहिए-
भू पर कीर्त्ति महान चाहिए।

तो तुम पथ सुन्दर अपनाओ-
राज इन्द्र का सब लौटाओ,
यज्ञ-भाग देवों को दे दो-
तुम पाताल-लोक अब ले लो।

वहीं रहो, तुम सुख-से, जाओ-
व्यर्थ नहीं अब जान गवाओ।
रण से कुछ भी काम न होगा,
इससे कोई नाम न होगा।

सुनकर दैत्यराज गुर्राया,
रूप भयकर विकट दिखाया,
पागल जैसे व्यग्र हुआ-सा,
कठिन काल उदग्र हुआ-सा।

दैत्य असख्य पठाए रण में,
कर्म अपावन के उस क्षण में,
बढे सभी देवी के सम्मुख-
मरण काल के हों ज्यों आमुख।

पूरी सेना हारी क्षण में
रक्त वीज तव आया रण में।
    यह दुर्धर्ष महापावक था,
    सभी तरह से यह घातक था।

इसके रक्त-वीज जव गिरते-
देत्य नये थे तुरत उपजते,
    उसी तरह के विकट भयकर-
    होते रण में झटपट तत्पर।

देवी के शूलों से जैसे-
रक्त वहे, उपजे खल वेसे-
    सव ये महाप्रचण्ड करा ले।
    भू को सदा सताने वाले।

जव भी वहाँ प्रहार हुआ था,
रक्त-वीज का रक्त वहा था,
    जिससे उपजे नए दैत्य-गण,
    करते थे सव भीषणतर रण।

इससे कोई पार न पाता,
देवों का था मन घवड़ाता,
    कहा देवि ने-धैर्य दिखाओ
    चामुण्डे अव मुँह फैलाओ।

रक्त-बीज का रक्त समूचा,
भर लो मुँह में होकर ऊँचा,
नीचे बिन्दु न गिरने पाए,
उन्हें चबा लो जो भी आए।

चामुण्डा ने वही किया था,
दैत्यों को ही चबा लिया था,
फिर तो सेना भाग गयी थी
दैत्यों की सब शक्ति गयी थी।

रक्त-बीज था बडा भयकर
सब कँपते थे उससे थर-थर।
उसका मारक घात बड़ा था,
उसमें नूतन रूप खड़ा था।

सचमुच उसकी शक्ति प्रबल थी,
पाप-कर्म अनुरक्ति सबल थी,
उसे पराजित हुआ देखकर,
देवों के उत्कर्ष निरतर।

लगा स्वय ही भू पर बढ्ने,
दीप्त कीर्त्ति-सा नभ में चढ्ने।
मातृ-गणों ने हर्ष मनाया,
काली-वन्दन सबने गाया।

लगी अप्सरा नृत्य दिखाने,
लगे सभी जन मोद मनाने!
देवों की यह बड़ी विजय थी,
मातृ शक्ति की जय अक्षय थी।

❖ ❖ :

ऋषिवर बोले-काली की जय-
राजन! बोलो होकर निर्भय!
यही जगत में सब करती है,
सब का दु ख सदा हरती है।

दुख में जो भी जन पड़ते हैं-
ग्लानि-गर्व में जो गड़ते हैं,
उनके सिर पर कर धरती है,
बारम्बार दया करती है।

जयति महामाया की जय हो-
पीड़ित धरती अब निर्भय हो!
दया करो माँ! तेरी जय हो-
कीर्तित तुम से जग परिचय हो।

विश सर्ग

मान-गर्व दैत्यों का क्षण-क्षण
घटता जाता था उत्पीड़न,
    बड़े-बड़े दैत्यों के नायक
    मृत्य-लोक के थे अधिनायक।

रक्त-बीज-सा भी उत्पाती,
देव-गणों का दृढ अपघाती,
मृत्यु-पाश में जकड़ गया था,
उसका कुछ भी नहीं पता था।

मेधा ऋषि ने कहा-कि राजन्,
सत्य, जगत में है परिवर्त्तन!
जितना जो दुर्धर्ष रहा है,
उतना वह अपकर्ष सहा है।

कहा सुरथ ने-हमें बताएँ-
माया का सब चरित सुनाएँ,
रक्त-बीज-सा भी अन्यायी-
शक्ति जिसे थी अति दुखदायी।

उसके मरने पर फिर कैसे?
शुम्भ-निशुम्भ मरे थे जैसे-
उसकी गाथा हमें बताएँ,
माँ का विशद चरित्र सुनाएँ।

दोनों महा भयकर दानव-
प्राप्त हुआ था कठिन पराभव-
वह सब गाथा सुनने को मन-
आज हुआ है ऋषिवर! उन्मन।

मेधा ऋषि ने कहा–धरा पर–
मातृ–शक्ति है केवल तत्पर।
सब क्षेत्रों में वही विमल है
कीर्ति उसी की सदा धवल है।

उसे छोड़ कुछ और न भू पर–
रहती वही सभी से ऊपर।
रक्त–बीज जब मरा भुवन में–
हर्ष जगा था सब के मन में।

दैत्यराज पर अकुलाया था,
क्रोध–विवश मन भरमाया था,
समझ न पाया देवी–महिमा,
माँ की कैसी होती गरिमा।

शुम्भ–निशुम्भ भुवन के द्रोही–
लक्ष्य बनाए काली को ही,
क्रोध–मत्त होकर वे आए,
अपना सारा गर्व दिखाए।

उनमें जितनी शक्ति भरी थी–
जो भी बल की त्वरा धरी थी,
सब कुछ लेकर चढ आए थे,
विजय–हेतु सब चढ आए थे।

जब निशुम्भ तलवार उठा कर-
झपटा देवी पर अकुलाकर,
देवी ने पर बाण चला कर,
विफल किया था अस्त्र भयकर।

दैत्यों का भारी दल वैसा-
लगता नभ में घन हो जैसा।
दूर-दूर तक व्याप्त भुवन था,
रण का घर्षण-घोष सघन था।

वज्रपात-सा गर्जन होता-
धैर्य हृदय था सब का खोता,
कोई शान्त न रह पाता था,
जन-जन मन से अकुलाता था।

देवी खड्ग विराट उठा कर-
मारा दानव के मस्तक पर,
दुर्गा-वाहन सिह गरज कर-
चढ बैठा था उसके सिर पर।

मरा निशुम्भ वहीं पर तत्क्षण-
धरती का वह अघ-उत्पीड़न!
मातृ-शक्तियाँ बनी समन्वित,
सात्विक कर्म किए थे निश्चित।

बाद उसी के शुम्भ पधारा-
आकर देवी को ललकारा।
बोला-दुष्टे दुर्गा आओ- आओ।
मुझ पर अपना शौर्य दिर
हो बड़ी मानिनी।
बनी हु मण्डी रूप-धारिणी।।
विकट न्तु दूसरी नारी का बल-
कर दिखलाती हो कौशल।
ले

तुझ में कोई शक्ति नहीं है,
पौरुष से अनुरक्ति नहीं है। ा,
तुझे सबक मैं सिखलाऊँगा।
सब का बदला मैं ही लूँ
नी-क्या है बाकी
देवी बोट। मैं हूँ एकाकी
अरे दुष्टी ही सब विभूतियाँ हैं-
मे अभिन्न सब सुमूर्तियाँ हैं।
ये

देखो मुझ में समा रही हैं-
एक रूप सब दिखा रही हैं। मानो
मुझ से अलग न कुछ भी नो।
विमल दृष्टि से सब पहच

मातृ-शक्ति सब विमल समन्वित,
देवी में ही हुई समाहित।
एक रूप अब देवि खड़ी थी,
शुम्भ दैत्य के पास अड़ी थी।

देवी बोली-विमल भक्ति से-
मैं अपनी ऐश्वर्य-शक्ति से-
रूप अनेकों में थी आई-
मुझ में वे सब पुन समाई।

रे-रे दुष्ट इधर अब आओ,
मुक्ति मुझी से तुम भी पाओ।
बन्धु तुम्हारा, सेना सारी-
गयी मुझी से है सब मारी।

तुम भी अपना प्राण गँवाओ,
दुष्ट दनुज अब जल्दी आओ।
बहुत देर तक हुई लड़ाई-
शक्ति दैत्य अतुल दिखाई।

उसने घात किए थे भीषण-
देवी को पर हुआ न पीड़न,
वार अनेकों वह करता था,
देवी से पर सब कटता था।

कुछ भी उसका काम न आया,
शौर्य-शक्ति सब व्यर्थ गँवाया।
उसका महा अनर्थ हुआ जब-
भू पर वह असमर्थ हुआ जब।

ऊर-

तब देवी ने उसे घुमारधरा पर।
पटक दिया था कठिन इने आया,
पुन उठा औ ला गिराया।
देवी ने तब मार

❖ ❖ ❖

मरा भुवन में जब वह दानव-
खुशियाँ छाई भू पर अभिनव।
दिशा-दिशा उत्फुल्ल हुई थी-
निर्मल-शान्त प्रफुल्ल हुई थी।

त्री।

जय माँ दुर्गे जीवन-दात्री।
त्रिभुवन की उत्कर्ष-विध वन्दन-
यही हमारा केवल लीन रहे मन।
तुझ में ही निज

एकविंश सर्ग

जय माँ दुर्गे। विश्व मोहनी-
कैसी तेरी महिमा?
जान न पाता कोई जग में-
तेरी अद्‌भुत गरिमा।

तुम ही अविरल करती हो माँ-
अग-जग का संचालन,
सूर्य-चन्द्र सब देव-गणों का-
तुझ से है परिचालन।

दुष्ट दनुज से काँप रहा था-
क्षण-क्षण सृष्टि चराचर,
शान्त हुआ अब धरती का मन-
स्वच्छ नील अधराधर।

धूमिल-सी थी सकल दिशाएँ-
था बस भरा कुहासा,
कोने-कोने से उठता था-
केवल मलिन धुँआ-सा।

सब उत्पात शान्त थे भू पर-
दिशा-दिशा थी हँसती,
धरती के सब प्राणी के मन-
मधुर-भाव से रसती।

जड़-चेतन में बड़ी वेदना-
छाई थी अनजाने,
आज लगे थे सभी स्वय ही-
जीवन में हर्षाने।

पापों के भय से जब नदियाँ-
लगी शुष्क हो रहने,
वे भी जल से पूरित होकर-
लगी बिहँस कर बहने।

दनुजों के कारण कितने ही-
राह बदल कर चलते,
वे सब आए शुद्ध भाव से-
हँसते और उछलते।

सभी तरफ आनन्द सिन्धु था-
भूतल पर लहराता,
चिन्ह कुटिलता का कोई भी-
देख न अब था पाता।

प्रकृति-नदी सौन्दर्यमयी थी-
मन को हरनेवाली,
सरस-सुहावन उपवन लगता-
हँसती डाली-डाली।

पापी दनुजों के मरने से-
लहर हर्ष की छाई,
सभी देवता मोद-मगन हो-
गाए सुभग बधाई।

शचि-पति पुन सिहासन बैठे-
राज स्वर्ग का पाया,
यज्ञ-भाग सब देव गणों का-
पास स्वय ही आया।

सूर्य-देव की प्रभा धुध से-
बाहर आ मुस्काई,
वायु मलय की सुरभि भरी अब
दिशा-दिशा में छाई।

हर्ष भरे देवों के मन में-
स्वर गन्धर्व जगाए,
मधुर-मधुर गीतों से अपनी-
वाणी खूब सजाए।

वाद्य-यत्र बज उठे अनेकों-
स्वर-सगीत-सुहाने,
सभी अप्सराएँ भावों में भर-
लगी नाचने-गाने।

अग्नि शलाका बुझी हुई थी-
वह अब जाग उठी थी,
जीवन-लहरी अपनी जड़ता-
खुद ही त्याग उठी थी।

दानव-दल का कर्कश-सा स्वर-
अब सब शान्त हुआ था,
उजड़ रहा सब क्षेत्र समुज्ज्वल
सुन्दर प्रान्त हुआ था।

शस्य-श्यामला धरती के कण-
मोती से थे लगते,
कदम-कदम पर बिखरे-बिखरे-
चम चम-चम चम करते।

ऋषिवर बोले-राजन! सब का-
समय सुहावन आता,
काँटों के ही बीच विधाता-
नूतन फूल सजाता।

दुष्टों की तो कुटिल दुष्टता-
सदा नहीं रह पाती,
कभी न भू पर शाश्वत चलता-
कर्म-निठुर-उत्पाती।

एक सत्य है, सदा चिरंतन-
वही भुवन में रहता,
सत्य-भ्रष्ट नर इस धरती पर-
कष्ट अहर्निश सहता!

शस्य-श्यामला धरती को कण-
मोती से थे लगते,
कदम-कदम पर बिखरे-बिखरे-
चमचम-चमचम करते।

ऋषिवर बोले-राजन! सब का-
समय सुहावन आता,
काँटों के ही बीच विधाता-
नूतन फूल सजाता।

दुष्टों की तो कुटिल दुष्टता-
सदा नहीं रह-पाती,
कभी न भू पर शाश्वत-चलता-
कर्म-निठुर-उत्पाती।

एक सत्य है सदा चिरंजन-
वही भुवन में रहता,
सत्य-भ्रष्ट नर इस धरती पर-
कष्ट अहर्निश सहता।

इसीलिए आवश्यक है नर-
उत्तम पथ अपनाए,
सुख-दुख में गिरते उठते भी-
एक निष्ठ रह जाए।

मानव का उत्कर्ष इसी में-
यही भविष्यत लेखा,
सत्-पुरुषों ने इसी राह पर-
सदा हर्ष है देखा।

देवि-कृपा से ही सब होता-
मानव क्या कर सकता?
माँ की महती स्नेह-कृपा से-
सूना घर भर सकता।

द्वि-विश सर्ग

दैत्य-दलन-अभिमुक्त देवता-
लगे वन्दना गाने,
मगल-कारक देवि भवानी-
की महिमा दुहराने।

कहा कि शरणागत की पीड़ा-
दूर तुम्हीं हो करती,
विश्व-नियता माता सब में-
शक्ति अपरिमित भरती।

तुम्ही विश्व की रक्षा करती-
हो आधार विभव का,
पृथ्वी रूपिणी रह कर तू ही-
कारण जग उद्भव का।

तेरा सदा अलङ्घनीय है-
निर्मल-विमल पराक्रम,
तुझ से ही कटता है माता-
जीवन का सब सभ्रम।

कारण भूता इस जगती की-
एक तुम्हीं हो माया,
देवि तुम्हीं हो मोक्ष-रूपिणी-
विद्याओ की जाया।

परा शक्ति हो तुम्ही भुवन में-
तुम्हीं भक्ति माँ मन की,
एक तुम्हीं में ज्योति समन्वित-
भूतल के कण-कण की।

एक तुम्हीं ने तो यह सारा-
विश्व व्याप्त कर रक्खा,
उर्ध्वमुखी जीवों के मन को-
सदा आप्त कर रक्खा।

रूप तुम्हारे ही हैं सारे-
भूतल की विद्याएँ,
तुम से ही है सदा प्रवाहित-
जीवन की धाराएँ।

तुम्हीं परावाणी हो जिसकी-
पूजा जन-जन करते,
बुद्धि-रूप हो तुम्हीं कि जिससे-
प्राणी भू पर जगते।

स्वर्ग-मोक्ष की दात्री तुम हो-
मगल करने वाली,
शरणागत पर नारायणि बन-
दया दिखाने वाली।

तुम्ही सिद्ध पुरुषार्थ सभी का-
करती हो इस जग में,
लक्ष्य तुम्हीं दिखलाती उनको-
भटक रहे जो मग में।

तुम्हीं सनातनि देवि कि जिससे-
पालन जग के होते,
लीन तुम्हीं में रह कर तुम में-
प्रलय काल में सोते।

सृजन काल में सृजन शक्ति बन-
सब का पालन करती,
फिर सहार तुम्हीं करती जब-
पाप-भावना जगती।

शख-चक्र औं गदा धारिणी-
अभय-दान तुम देती,
अपने भक्त जनों के मन का-
कष्ट सभी ले लेती।

तुम कल्याणी नारायणि हो-
नमस्कार हम करते,
तेरे चरण-कमल पर अपना-
मस्तक सादर धरते।

देवि महामाया हो तुम ही-
जिसके वश सब प्राणी,
तेरे वन्दन अभिनन्दन में-
साथ न देती वाणी।

किन शब्दों में तेरा वन्दन-
और भजन हम गाएँ,
तुम्हें छोड़कर किसके आगे-
अपना मर्म दिखाएँ।

आदि वाक्य वेदों में तुम हो-
तेरी अतुलित गाथा,
गिरे पक में जीवों के हित-
एक तुम्हीं हो त्राता।

तुम से अलग नहीं है कुछ भी-
लीन सभी में तुम हो,
धान्य-विभव सम्पूज्य सृष्टि के-
सिर पर जय-कुकुम हो।

• •• •

मेधा ऋषि ने कहा कि देवों-
की यह अभिनव वाणी,
मोक्ष दायिनी सकल विश्व के
हित में है कल्याणी।

इसका वाचन मुक्ति प्रदायक-
प्राणी का सरक्षक
हर सकट में सदा रहेगा-
वनकर जग का रक्षक।

आओ, हम सब भी कल्याणी-
माँ को विनय सुनाएँ,
उसके पाद-पद्म पर अपना-
सादर शीश झुकाएँ।

त्रिविंश सर्ग

मेधा ऋषि ने कहा–देव-गण–
    भक्ति-भाव से भर कर,
पूजन अर्चन किया देवि का–
    मन से पाँव पकड़ कर।

विमल भाव से कहा सभी ने-
हे देवी। कल्याणी,
शक्ति तुम्हीं दो, तेरा वन्दन
गाए अनुदिन वाणी।

तीनों लोकों में रहती हो-
सब ही की हो पूज्या,
तुम्हें छोड़ कर नहीं कहीं भी
कोई माले दूज्या।

पड़े हुए हैं चरण तुम्हारे-
माँ प्रसन्न हो जाओ,
वर देकर माँ हम सब को ही-
अपना शीघ्र बनाओ।

कहा देवि ने-मैं तत्पर हूँ-
जो इच्छा हो माँगो,
दूँगी जग उपकारक वर मैं-
भय-दुविधा सब त्यागो।

किसी तरह की कोई शका-
मन में कभी न लाना,
दीन-दुखी जन की सेवा में-
अपना हृदय लगाना।

–

सेवा व्रत में परम शक्ति है-
इससे ही सब मिलता,
सेवा-लीन हृदय सकट में-
कभी न तिल भर हिलता।

देव-गणों ने कहा कि अम्बे-
हे सर्वेश्वरि माता,
सात्विकता की ज्योति जगाओ-
हे माँ, शान्ति-प्रदाता।

माया में नर तड़प रहा है-
उसको राह दिखाओ,
तिमिराच्छन्न जगत में अपनी-
जगमग ज्योति जगाओ।

जग के अन्ध-बन्ध में मानव-
खुद ही अटक रहा है
अपने ही कर्मों के कारण
पग-पग भटक रहा है।

अपना मकड़ी-जाल बनाकर-
चक्कर स्वय लगाता,
एक वृत में अनजाने ही-
रहता आता-जाता।

दुख की जड़ में कभी न जाता-
यों ही है अकुलाया,
सुख का कांक्षी, जान न पाता-
क्योंकर है दुख आया।

इसे ज्ञान दो, इस धरती को-
सुख का धाम बनाए,
जीवन को सुखमय कर डाले-
कभी नहीं पछताए।

जीवन तो सचमुच है भूपर
माता। एक पहेली,
आकर्षण की यहाँ रागिणी
जगती है अलबेली।

इससे जिसका विरत हुआ मन-
वही सोच कुछ सकता,
व्यर्थ भावना के घेरे में-
यों ही नहीं उलझाता।

ऋषि-मुनियों ने सदा कहा है-
जीवन है क्षण-भगुर,
इसकी डाली में खिलते हैं-
झड़ने को नव अकुर।

मरण बिन्दु को जिसने जाना-
सब कुछ उसने पाया,
उसी पुरुष ने जीवन में है-
सत्य-मार्ग अपनाया।

और नहीं तो अन्ध कूप में-
ठोकर सब जन खाते,
जीव कहाँ है आता-जाता-
कोई देख न पाते।

निश्चय माता! वर तुम अपना-
जग उपकारक दोगी,
अब है यह विश्वास कि माते-
जग का दुख हर लोगी।

जन्म-मरण के जड़-पाशों में-
जीवन है दुख पाता,
ममता का ही दीप सुलग कर-
सबको सदा सताता।

माते! जन-जन की सब बाधा-
तुम ही शान्त करोगी,
कुशल-क्षेम सब प्राणी मात्र का-
अपने ऊपर लोगी।

जग के सब प्राणी निर्बल हैं–
उनमें शक्ति नहीं है,
उनके जीवन में अपने से–
कुछ अनुरक्ति नहीं है।

जैसा, तुम जो कर दोगी माँ,
वैसा ही जन होगा,
तुझ से ही बिखरे तारों का–
पूर्ण समापन होगा।

देवी ने तब 'एव मस्तु, कह–
अपनी बात बतायी,
सब का मगल करने वाली–
हँसी अधर पर छायी।

उसने कहा कि धरती पर जब–
कोई सकट आए,
सत–जनों का हृदय धरा पर–
जब भी कुछ अकुलाए।

याद मुझे कर लेना आकर–
सकट दूर करूँगी,
साधु–पुरूष के जीवन का सब–
भार स्वय ही लूँगी।

मर्त्य लोक के मनुज सदा ही-
मुझ में हृदय लगाएँ,
अपनी बढ़ती इच्छाओं का-
मुझ पर अर्घ्य चढ़ाएँ।

शान्त तभी सब होगी ज्वाला-
जीवन सुखद बनेगा,
मर्त्य लोक का मानव उठ-
देवत्व प्राप्त कर लेगा।

मानव जीवन ही है ऐसा-
जिसमें सब है सम्भव,
यही योनि देवत्त्व प्राप्ति का-
बनता साधन-उद्भव।

इसीलिए है श्रेय कि इसको-
खूब सँभारा जाए,
इस योनी को किसी तरह का-
कलुष न लगने पाए।

मैं तो हूँ तैयार मनुज को-
लेकिन है सब करना,
उसको ही है अन्तर अपना-
सद्भावों से भरना।

मानव में मानवता जागे-
स्वार्थ न जगने पाए,
यही समय है जगकर प्राणी
नव उत्कर्ष दिखाए।

इतना कह फिर देवी बोली-
सभी देवता जाएँ,
धरती का कल्याण करें औं-
सेवा-व्रत अपनाएँ।

मेधा ऋषि ने कहा कि राजन्!
देवी सदा जगी है,
सब जीवों के अन्तरतर से-
उसकी ज्योति लगी हैं।

निश्चय मानो, देवी भव का-
सब कल्याण करेगी,
निर्धन के घर में भी जगकर-
सम्पद वही भरेगी।

आओ, हम सब देवी की ही-
जय-जय प्रतिक्षण गाएँ,
देवी के आदर्श चरित में-
अपना हृदय रमाएँ।।

चतुर्विंश सर्ग

सब रूपों में देवि तुम्हें ही-
मैं प्रणाम नित करता,
तेरे आशीर्वचनों से ही-
जीवन सदा सुधरता।

मेधा ऋषि ने हाथ जोड़ कर-
अपना शीश झुकाया,
देवि महामाया के सम्मुख-
उनका ही गुण गाया।

गद्-गद् मन से भाव प्रवण हो-
मन से कीर्त्तन करते,
सब प्राणी में सदा सत्य की-
पुण्य भावना भरते।

पावन आश्रम नई प्रभा से-
हर क्षण था उद्भाषित,
देवी के पूजन-अर्चन से-
रहता सदा सुशोभित।

सत्य-ज्ञान की विमल वर्त्तिका-
वहाँ सुलगती रहती,
पावन गगा-यमुना की ही-
मानो धारा बहती।

वैदिक मत्रों का होता था-
मन से पाठ निरतर,
शुभ भावों से भरा-भरा था-
सब जीवों का अन्तर।

ऋषिवर हँसकर सुरथ नृपति से-
औ समाधि से बोले-
माया ही है सब प्रपच की-
गठरी जग में खोले।

यही महामाया है जग को-
धारण करने वाली,
सब कुछ की है वही नियता-
प्राण बचाने वाली।

विद्याएँ उत्पन्न उसी से-
मोह उसी की छाया,
उसने ही है इस जगती का-
सारा जाल बिछाया।

विष्णु देव की माया-रूपा-
देवी ने हम सबको,
मोह-ग्रसित कर रक्खा अपने-
माया से ही भव को।

कहीं केन्द्र में राज-पाट है-
कहीं खड़े सबधी,
इसी महामाया के कारण-
सारी दुनिया अधी।

कोई पार न इसका पाता-
सब हैं उसके वश में,
ऊभ-चूभ कर रहे सभी जन-
ममता के ही रस में।

यही प्रसन्न हुई तो समझो-
सब कुछ है मिल जाता,
परम तृप्त हो मनुज धरा पर-
सदा श्रेष्ठ कहलाता।

सब कुछ उस पर ही निर्भर है-
करो प्रसन्न उसी को,
वही निकाल सकेगी केवल-
मन में मोह-बसी को।

नहीं विवेक किसी का रहता-
इस माया के सम्मुख,
सदा थपेड़ा देता रहता-
लहरों-सा यह सुख-दुख।

जब से सृष्टि हुई है तब से-
यही चक्र नित चलता,
पूरब में दिनमान निकलता-
पश्चिम में है ढलता।

जो भी हुए जगत में सब हैं-
माया के ही मारे,
क्या महत्त्व फिर इस धरती पर-
मेरे और तुम्हारे?

जो भी हुए और फिर जो भी-
होंगे जग के प्राणी,
इसी व्यूह में सदा रहेंगे-
चलते-से बेमानी।

भव में आने जाने का यह-
बन्धन बड़ा कठिन है,
सब जीवों के मस्तक पर यह-
कोई भारी ऋण है।

मन के निर्मल सत्प्रयास से-
यह बन्धन कट सकता,
केवल माया की प्रसन्नता-
से यह ऋण हट सकता।

इसी महामाया के सम्मुख-
नत मस्तक सब रहते,
जैसा जो वह कर्म कराती-
वैसा ही हम करते।

यह माया तो अपने ऊपर-
कोई दोष न लेती,
कर्म-सुकर्म सभी जीवों को-
करने का बल देती।

जो सुकर्म के पथ पर आता-
उसका सब कुछ बनता,
और नहीं तो सारे साधन-
रहते मनुज बिगड़ता।

इतनी छूट मिली है नर को-
अपना कर्म सुधारे,
अपना सुखद भविष्य बनाए-
अपना भाग्य सँवारे।

मानव जीवन एक मोड़ पर-
खड़ा पथिक है जानो,
चौराहे पर, कौन पथ है-
अपना, यह पहचानो।

यही जानना सदा मनुज का-
लक्ष्य सुहावन बनता,
जीवन का पीयूष धूल में-
कभी न जिससे सनता।

जीवन को वरदान मिला है-
इसको सुखद बनाओ,
इससे अपने भावी पथ पर-
निर्मल ज्योति जगाओ।

विष्णु-स्वरूपा माया सब को-
परम तत्त्व है देती,
बदले में वह नहीं किसी से-
कभी-कहीं कुछ लेती।

उसे प्रसन्न बनाने का है-
मार्ग सुगम इस जग मे,
लक्ष्य करो निर्धारित निर्मल-
जीवन के इस पग में।

जाओ राजा सुरथ, भविष्यत्-
अपना स्वय विचारो,
वैश्य समाधि स्वय अब तुम भी-
अपना पथ सँवारो।

अपना कर्म स्वय ही जगकर-
तुम को करना होगा,
अपने जीवन-घट में अमृत-
खुद ही भरना होगा।

कोई नहीं दूसरा जग में-
कर्म किसी का करता,
सब प्राणी इस निखिल सृष्टि में-
अपना करता-धरता।

अपने किए कर्म का ही फल-
देवि। सदा है देती,
मनुज सजाता अपने बल से-
अपनी सारी खेती।

वही वृक्ष उगता है भू पर-
जैसा बीज पडेगा,
आम्रवृक्ष से कभी किसी को-
अमरूद नहीं मिलेगा।

सत्य कर्म से सदा मनुज में-
सात्विकता है जगती,
फिर तो निर्मल ज्योति सुहावन-
मन में स्वय सुलगती।

ऋषिवर का उपदेश श्रवणकर-
सब ने शीश झुकाए,
सुरथ और वह वैश्य हृदय से-
माया के गुण गाए।

दोनों आकर गहन विपिन में-
लगे तपस्या करने,
जीवन के अवशेष क्षणों को-
सत्य-ज्योति से भर ले।

विष्णु स्वरूपा माया तेरी-
गाथा निर्मल पावन,
तुझ से ही जन-जन का होता-
जीवन अनुपम-भावन।

जयति महामाया हम तेरी-
महिमा मन से गाएँ,
करके तेरा पूजन-अर्चन-
अपना तुम्हे बनाए।

पचविंश सर्ग

विष्णु-स्वरूपा माया तेरा-
कोई पार न पाता,
तेरे पद-पद्मों पर मानव-
सादर शीश झुकाता।

माया-कारण सुरथ खिन्न था-
अपने राज्य-हरण से,
ममता-वश अद्विग्न हृदय था-
असमय दु:ख वरण से।

वैश्य समाधि स्वय परिजन से-
अपमानित हो आया,
मलिन-बोध औं हीन भाव से
भ्रमित चित्त अकुलाया।

मेधा ऋषि ने दोनों में ही-
भक्ति भाव सरसाये,
देवी की उत्पति-शक्ति के-
वर्णन उन्हे सुनाये।

दोनों जन के मन में सहसा-
भाव नए ही जागे,
दोनों ने शैथिल्य-दोप सब-
खुद ही जग कर त्यागे।

मेधा ऋषि के चरण-कमल पर-
झुक कर नमन किया था,
प्रवित हृदय से जलन-ज्वाल-
अन्तर का शमन किया था।

मेधा ऋषि ने कहा कि जाओ–
देवी को अपनाओ,
उनके पूजन–आराधन में–
अपना हृदय लगाओ।

जिस पर वह ढल जाती, उसको–
सब कुछ क्षण में देती,
सात्विक मन की पूजा–अर्चा–
उसकी सदा चहेती।

चचल मन की सभी वासना
दूर वही कर देगी,
अधकार से मलिन हृदय में–
निर्मल ज्योति भरेगी।

जाओ, जाकर विष्णु– स्वरूपे–
माया को ही साधो,
उसमें हृदय रमा कर मन की–
चचल गति को बाँधो।

देवी ही कल्याण करेगी–
कभी नहीं यह भूलो,
उसकी भक्ति–भावना–रस में–
पङ्कज बन तुम फूलो।

सकल सिद्धियाँ प्राप्त करोगे-
उसका ही वर पाओ,
देवी के तप-साधन में ही-
अपना हृदय लगाओ।

ऋद्धि-सिद्धियाँ दासी उसकी-
सब की शक्ति वही है,
सत-तपस्वी के अन्तर में-
दृढ अनुरक्ति वही है।

सर्व मंगला मूर्ति वही है-
वही देवि अविनाशी,
श्रेय-प्रेय आराध्य वही है-
करुण हृदय-अधिवासी।

वही काम्य है, सकल भुवन में-
उत्प्रेरक शुभ-कामी,
एक मात्र जगदम्बा ही है-
सब की अन्तर्यामी।

एक निष्ठ सर्वात्म भाव से-
उसमें हृदय लगाओ,
वही प्रसन्न हुई तो मन से-
जो चाहो सो पाओ।

कुछ भी उसे अदेय नहीं है-
सब की है वह दात्री,
गोचर और अगोचर जग की-
वही अकेली धात्री।

पालन करती वही सृष्टि-
उसमें ही सब बसते,
वही प्रेरणा देती, तब हम-
रोते और विहँसते।

प्रेरित जो न करे, तो जग का-
तिनका डोल न सकता,
वाणी-रूपा वह न मिले, तो-
कोई बोल न सकता।

जाओ, भक्ति-भाव से भर कर-
देवी को अपनाओ,
श्रद्धानत एकाग्र हृदय से-
दुखड़ा उसे सुनाओ।

करुणामय वह देवि तुम्हारा-
सकट दूर करेगी,
जो भी प्राप्य तुम्हारा है, वह-
अश तुम्हें सब देगी।

श्रद्धा से ऋषि के पद छूकर-
सबने नमन किया था,
तप-साधन के लिए तुरत ही-
वन में गमन किया था।

वहीं नदी के तट पर जाकर-
दिखे तपस्या करते,
कठिन साधना-व्रत से दोनों-
सयम पूर्वक रहते।

माटी की ही मूर्त्ति बनायी-
देवी की कल्याणी,
हुई उसी में प्राण प्रतिष्ठा-
जागी दिव्य भवानी।

निराहार रह धूप-दीप से-
पूजन-हवन किया था,
देकर फिर पुष्पाञ्जलि उनको-
अन्तर शुद्ध किया था।

होकर फिर एकाग्र-भाव से-
देवी-सूक्त सुनाया,
कर के स्वय समर्पित माँ को-
अपना हृदय चढाया।

वर्षों तक की कठिन तपस्या-
एक दिवस फल लाई,
हुई प्रसन्न महामाया ही-
सम्मुख उनके आई।

आकर बोली दोनों से ही-
जो माँगो, वर दूँगी,
जो भी हो अभिलाषा कह दो-
सभी पूर्ण कर दूँगी।

द्रवित तपस्या से ही होकर-
पास तुम्हारे आई,
वत्स। हृदय की निर्मल करुणा-
दोनों पर है छाई।

कहो, तनिक सकोच न लाओ-
मन को स्वस्थ बनाओ,
जो चाहोगे, सब कुछ दूँगी-
नव जीवन अपनाओ।

कहा नृपति ने मेरा अपहृत-
राज्य पुन मिल जाए,
अन्य जन्म में राज्य मिले, वह-
नष्ट न होने पाए।

किन्तु वैश्य का चित्त जगत से-
पूरा उचट गया था,
उसमें अब वैराग्य-ज्ञान का-
जागा भाव नया था।

हाथ जोड़कर बोल उठा वह-
इतना ही माँ कर दो,
ममता औं आसक्ति-नाश का
माते मुझको वर दो।

देवी बोलीं-सुरथ तुम्हारे-
शत्रु पराजित होकर
राज-पाट सब लौटायेंगे-
स्वत्व भुवन का खोकर।

राज्य प्राप्त कर, पुन दूसरा-
जन्म धरा पर पाना
सूर्य-अश सावर्णि मनु तब-
होकर नाम कमाना।

देवी ने फिर कहा-वैश्य वर!
पूर्ण मनोरथ कर लो,
मोक्ष-प्राप्ति के लिए हृदय में-
विमल-ज्ञान अब भर लो।

अन्तर्धान हुई थी देवी–
दोनों को वर देकर,
दोनों के ही कुशल–क्षेम का–
भार स्वय ही लेकर।

देवी की यह महिमा कोई–
गाते नहीं अघाते,
उसकी दिव्य विभा सम्मुख सब
नत–मस्तक रह जाते।

कितनी करुणा–दयामयी है–
कौन भला बतलाए,
किसमें है सामर्थ्य कि उसकी–
गरिमा के गुण गाए।

जब–जब सृष्टि बनी है तब–तब–
स्वय धरा पर आकर,
पावन–ज्ञान दिया करती है–
ममता–मोह मिटा कर।

लेकिन मूढ़ धरा के प्राणी–
समझ नहीं कुछ पाए,
जग के कारण–भव–तारण को–
रहते सदा भुलाए।

आज उसी के कारण जग में-
अन्धकार है फैला,
कहीं न कोई ज्योति प्रकाशित-
दिक्-दिक् दिखता मैला।

जग कर हमें पुन देवी से-
पुण्य-ज्ञान है पाना,
अपने यत्नों से जीवन में
सौरभ है सरसाना।



देवी गाथा नारी जागृति-
की है विमल कहानी,
मूक, दीन, अबला के मन की-
शक्ति-समन्वित वाणी।

नारी शक्ति परम है जग की-
इस पर है सब आश्रित,
भव-समाज इसके गौरव से-
होता सदा समादृत।

पुरुष और नारी होते हैं-
सब समाज के पहिए,
दोनों को सम्पुष्ट धरा पर-
अविरल करते रहिए।

नारी को हम कभी उपेक्षित-
यहाँ नहीं कर सकते,
देश-राष्ट्र के बल-महत्त्व सब-
उससे ही बढ सकते।

नारी-शक्ति स्वय माया का-
एक रूप है मानी!
इसके सचित वेगों में है-
गति की तीव्र रवानी।

इसी महामाया का वन्दन-
मिलकर हम सब गाएँ!
शक्ति-रूपिणी नारी को हम-
उसका अश दिलाएँ।

जय माँ दुर्गे विभव-दायिनी!
भक्ति-समन्वित-रूपा,
जयति महामाया इस जग में-
तेरी शक्ति अनूपा।

जय-जय-जय-जय निशिदिन गाएँ-
माते! जल्दी आओ,
दु ख-ताप से दग्ध धरा पर-
जीवन रस बरसाओ।

कठिन विषमता फैल रही है-
माता समता लाओ,
करुणा-दया-क्षमा की भू पर-
जगमग ज्योति जगाओ।

मान-मूल्य जो बिखर रहे हैं-
उन्हें प्रतिष्ठा-बल दो,
सत्य-न्याय की रक्षा के हित-
जग को शक्ति प्रबल दो।

जय-जय दुर्गे ! जय माँ काली
विष्णु-स्वरूपा माता,
तडप रहा जग आज तुम्हीं को-
क्षण-क्षण पास बुलाता।

आओ, माते क्षमा-रूपिणी-
विश्वम्भर-जय-वाणी,
एक तुम्ही निर्वल प्राणी में-
शक्ति-रूप कल्याणी।

जय माँ दुर्गे दु:ख-हारिणी-
भुवन मोहिनी अम्बे!
धरती तुम्हें पुकार रही है-
आओ माँ जगदम्बे!!

समाप्त